॥राम॥

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

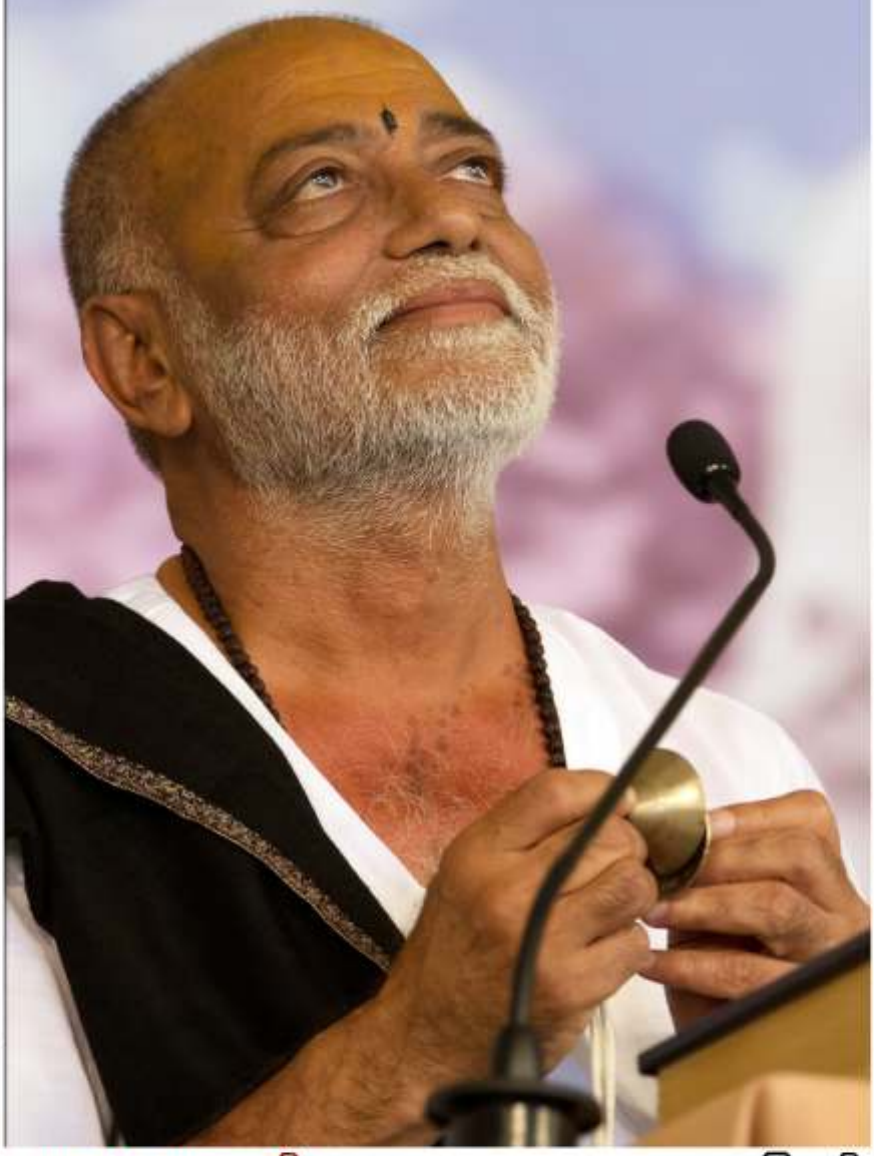

मानस–राजधानी

दिल्ही

राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही।।
सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी।।

SOUND
SOUND
APRC

॥ रामकथा ॥

मानस–राजधानी

मोरारिबापू

दिल्ली

दिनांक : २३-११-२०१३ से ०१-१२-२०१३

कथा-क्रमांक : ७५२

प्रकाशन :
मई, २०१४

प्रकाशक

श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट

© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक

नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

राम–कथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क –सूत्र :

ramkatha9@yahoo.com

ग्राफिक्स

स्वर ॲनिम्स

प्रेम–पियाला

मोरारिबापू की रामकथा ता. २३–११–२०१३ से १–१२–२०१३ दरमियान दिल्ली में सम्पन्न हुई। भारत की राजधानी दिल्ली में हुई इस कथा स्वाभाविक रूप से 'मानस–राजधानी' विषय पर केन्द्रित हुई और नव दिवसीय कथा में 'मानस' के परिप्रेक्ष्य में राजधानी विषयक बापू का दर्शन प्रकट हुआ।

हमारे देश में कई मनीषीओं ने की हुई राजधानी की व्याख्याओं का बापू ने स्मरण किया और वह स्थूल बात से सूक्ष्म की ओर गति करते हुए ऐसे सवाल भी किये कि एक प्रेमी की राजधानी कौन? एक आश्रित की राजधानी कौन? एक शिष्य की राजधानी कौन? एक साधक की राजधानी कौन? एक समर्पिता नारी की राजधानी कौन? इन सभी राजधानीओं का सूक्ष्म निर्णय करना होगा।

जहां शिष्य की सुरक्षा हो, जहां शिष्य का सम्यक् विकास और विश्राम हो, ऐसे अध्यात्मजगत के पाटनगर को बापू ने इन शब्दों में निर्दिष्ट किया, ''मेरी समझ में आश्रितों के लिए पाटनगर है गुरुद्वार। गुरुतत्त्व ही पाटनगर है, राजधानी है। वहां हमारी संपदा है, वहां हमारी सुरक्षा है, वहां हमारे गुनाहों को माफ़ किया जाता है, वहां हमें संशय से मुक्त किया जाता है।''

मोरारिबापू ने राजधानी के कुछ स्थूल लक्षणों का भी निर्देश किया। अपनी सूत्रात्मक शैली में बापू का ऐसा निवेदन रहा, ''राजधानी का एक लक्षण है, राजधानियां प्रचारक होती है। राजधानी प्रचारक तो हो, लेकिन राजधानी उद्धारक भी हो; ये दूसरा सोपान है। राजधानी अर्थजगत की उद्धारक हो, राजधानी धर्मजगत की उद्धारक हो, राजधानी सामाजिक व्यवस्था की उद्धारक हो, राजधानी का कर्तव्य और दायित्व है वो साहित्यजगत की भी उद्धारक हो। लेकिन नितांत आवश्यक है, राजधानियां स्वीकारक हो, कुबूल करनेवाली हो।''

बापू ने भावजगत–प्रेमजगत की राजधानी को एवम् उस राजधानी के विभिन्न अंगों को भी विशिष्ट ढंग से अर्थघटित किया। व्यासपीठ का कहना हुआ कि, ''भावजगत की राजधानी है हृदय और उसका राजा है प्रेम। प्रेम ही दिल का शासक है। प्रेमरूपी सम्राट की रानी का नाम है मस्ती। और ध्यान देना, सहज, स्वाभाविक, मर्यादा से दीक्षित मस्ती। मस्ती महारानी है। प्रेम का रक्षक–सैनिक है भरोसा। और सचिव कौन? ये मेरा अंगत मत है, प्रेमरूपी सम्राट का सचिव है त्याग।''

'मानस–राजधानी' कथा अंतर्गत मोरारिबापू ने राजधानी के स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार का विश्लेषण किया; साथ ही 'रामचरित मानस' के कई पात्रों–प्रसंगों का अनुसन्धान भी किया।

– नीतिन वडगामा

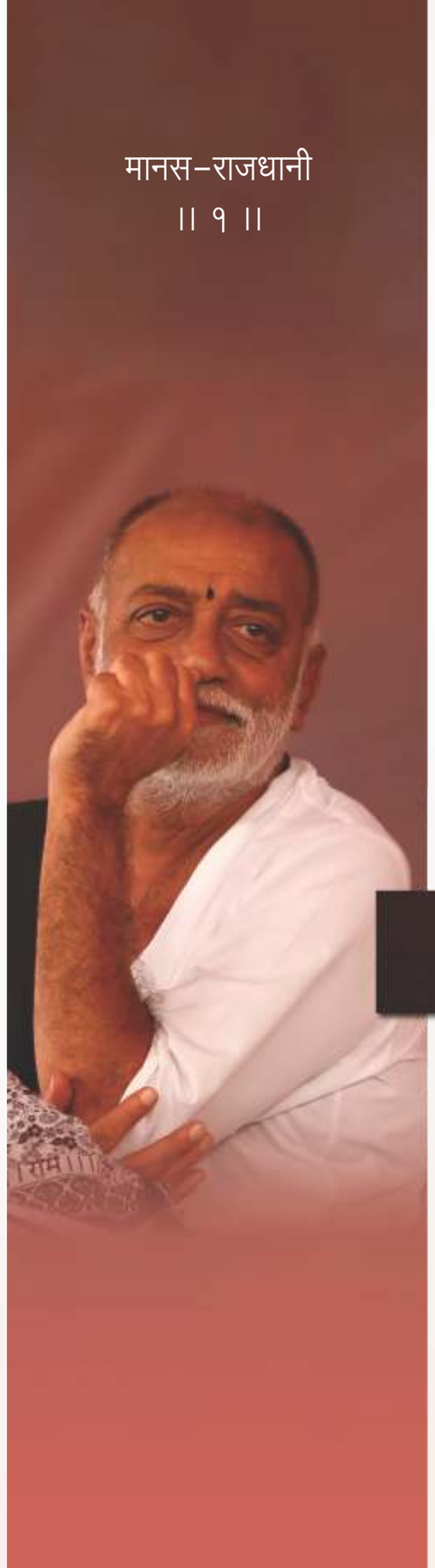

मानस–राजधानी
॥ १ ॥

गुरुद्वार ही आश्रितों की राजधानी है

राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही॥

सुंदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥

बाप! परमात्मा की अहेतु कृपा से फिर एक बार भारत की यानी हमारे राष्ट्र की राजधानी में रामकथा का सत्संग आयोजित हुआ है। कथा के आरंभ में हमारे पूजनीय स्वामीजी महाराज, हमारे पूजनीय पंडितजी महाराज और अन्य परोक्ष-अपरोक्ष बैठे हुए पूज्य चरणों में मेरा प्रणाम। इस कथा के आयोजक सभी आदरणीय महानुभाव, इनके परिवारजन, समाज के विशिष्ट महानुभाव, आप सभी मेरे श्रावक भाई-बहन, विज्ञान के ज़रिये पूरी दुनिया में सुनी जा रही, देखी जा रही इस रामकथा के सभी श्रोता भाई-बहन और अन्य सभी को व्यासपीठ से मैं प्रणाम करता हूं।

जमुना के तट पर बसी इस नगरी में मैं सोच रहा था कि किस विषय पर बोलूं? निर्णय तो नहीं कर पाया था, लेकिन यहां आने के बाद ऐसे ही यज्ञकुंड के पास बैठा था, गुरुकृपा से एक बात स्फुरित हुई। उसको कोई दूसरे अर्थ में प्लीज़ मत लेना, क्योंकि एक तो ये राजधानी है भारत की। दूसरा, चुनाव का माहौल है। इसीलिए कोई इसको दूसरे अर्थ में मत लेना। क्योंकि हम यहां इकट्ठे हुए हैं 'रामचरित मानस' की मंत्रात्मक पंक्तियों का सात्त्विक-तात्त्विक अर्थ मैं और आप सभी संवाद के रूप में समझने के लिए। मैं इसमें जाउंगा। यहां कोई विवाद नहीं है, अपवाद नहीं है, न कोई दुर्वाद को जगह है। दुनिया की राजनीति में तो दुर्वाद चल रहा है! यहां कोई उसका अवकाश नहीं है। हां, 'रामचरित मानस' ने जहां-जहां स्पर्श किया है, वो तुलसी की देन है और मेरे सद्गुरु भगवान ने जो कुछ दिया है उनमें से जो मुझे समझ में आया उसको आपके सामने मैं रखूंगा। लेकिन हेतु हेत के सिवा और कोई नहीं है। इस कथा के पीछे आयोजकों ने भी मुझसे स्पष्टता की थी कि कोई हेतु नहीं है। केवल और केवल 'स्वान्त: सुखाय' कथा है।

तो, पहले ही दिन मैं स्पष्टता करना चाहूंगा कि विषय ऐसा है कि

उसको दूसरे में कोई न ले जाए। मैं इस कथा का नामाभिधान करता हूं, 'मानस-राजधानी।' अब ये शब्द ऐसा आ रहा है कि तुरंत आपका दिमाग चारों और घूमने लगेगा! लेकिन एक संत द्वारा, 'मानस' की राजनीति दीक्षित हुई है, इसलिए यहां कोई ओर बातों को अवकाश नहीं है।

दोनों पंक्तियां मैंने 'बालकांड' से ली है। आप निरंतर कथा सुनते अथवा 'रामचरित मानस' का निरंतर पारायण करते हैं, आप समझ गए होंगे कि -

राज धनी जो जेठ सुत आही।

नाम प्रतापभानु अस ताही।।

भगवान भूतभावन महादेव पार्वती के सामने कैलास के वेदविदित वटवृक्ष की छाया में जब रामकथा में पार्वती के पूछने पर, उनके अवतार के कारण की चर्चा करते हैं, उस समय प्रतापभानु की कथा एक महत्त्व का पांचवा कारण माना गया है 'रामचरित मानस' में। बृहद् रूप में प्रतापभानु का चरित 'रामचरित मानस' में आया है। विश्वविख्यात कैकेई देश, वहां का राजा सत्यकेतु, उसके दो पुत्र प्रतापभानु और अरिमर्दन। राज्य का उत्तराधिकारी, राजधनी, राज का उत्तराधिकारी, जो होनेवाला है वो ज्येष्ठपुत्र है। जिसका नाम गोस्वामीजी बताते हैं, 'नाम प्रतापभानु अस ताही।' यहां 'राजधनी' शब्द है। ध्यान देना, वो ही प्रतापभानु कालांतर में रावण होता है। और रावण होने के बाद अपनी राजधानी के लिए घूमता है। और त्रिकूट पर बसी एक नगरी में आकर चारों ओर से नगर को देखा। रावण को सुख हुआ। तुलसी लिखते हैं, 'सुंदर सहज अगम अनुमानी।' ये नगरी सहज सुंदर थी। और रावण ने सोचा कि इस नगरी पर हमला करना, उसको वश करना, उसके मर्म को जानना अगम है, ऐसा उसने अनुमान किया है। 'कीन्हि तहाँ रावन रजधानी।' वहीं रावण ने अपनी रजधानी स्थापी।

तो, राजधानी में कथा हो रही है। कथा का विषय रहेगा, 'मानस-राजधानी।' फिर एक बार, उसका कोई दूसरे संदर्भ में अर्थ मत करना। 'रामचरित मानस' के प्रथम सोपान 'बालकांड' की ये दो पंक्तियों के आधार पर हमारा संवाद नव दिन तक चलेगा। कुल स्थूल रूप में समझ ले पहले। 'राजधानी' का मतलब क्या? 'राजधानी' शब्द आता है तो सीधी-सी बात है, राजा, एक पाटनगर। हरेक मुल्क को अपना पाटनगर होता है। लेकिन थोड़ा स्थूल रूप में देखें तो पाटनगर मानी क्या? फिर उसको हम आध्यात्मिकता की ओर लिए चलें तो समझना सरल रहेगा। स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति। और आदमी स्थूल से ही धीरे-धीरे स्वाभाविक सूक्ष्म की ओर गति करता है। आप यदि साधना मारग में है, छोड़ो, अरे! उम्र बढ़ने के बाद भी आदमी स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति करने लगता है। कुछ समय तक हमको कोई चीज़ बहुत अच्छी लगती है। लेकिन उसके बाद धीरे-धीरे वो सूक्ष्म हो जाती है और सूक्ष्म हो जाती है तब लगता है, इतना समय मैं स्थूल क्यों रहा? इस भौतिकता के साथ मैंने क्यों संबंध रखा? ये सब साधकों के जीवनयात्रा के पड़ाव है।

तो, पहले 'राजधानी' का मतलब क्या है? जो पूरे मुल्क के केन्द्र में एक नगर होता है। बहुधा जहां हम केन्द्रित होते हैं, राजधानी उसको कहते हैं। जहां प्रजा के विकास और विश्राम की योजनाएं बनती है, बननी चाहिए। इसलिए केन्द्र होता है। विकास और विश्राम दोनों। मैं केवल विकासपक्षी आदमी नहीं हूं। विश्राम के बलिदान पर विकास का कोई अर्थ नहीं है। राष्ट्र का विकास हो, लेकिन राष्ट्र को विश्राम मिले। गुरुकृपा से मेरी समझ में, जिस नगर में जनता के विकास और विश्राम की योजनाएं बने ऐसा एक नगर जिसको हम पाटनगर कहते हैं। जहां जिस नगर में, राजाशाही के समय में राजा का दरबार हो, लोकशाही के समय में राज्यसभा, लोकसभा अथवा तो हमारी लोकशाही के अनुकूल जो-जो हो। वहां सब बैठते हैं। राजाशाही में क्या होता था कि मासुम गाज़ियाबादी का एक शे'र याद आ रहा है। राज्यों के राजदरबार जब बनता था, दरबार में राजा बैठता था, मंत्रीगण होते थे, प्रशंसक होते थे। और चर्चाएं भी होती थी। उसमें बहुधा राजा की प्रशंसा बहुत होती थी। लेकिन मासुमसाहब ने प्यारा शे'र लिखा है -

अवामी गीत है मेरे मेरी बागी गुलुकारी।

मुझे वो दाद क्या देगा, जो सुने राग दरबारी।

मैं जो कविताएं लिखता हूं वो अवामी है। मेरी गुलुकारी विद्रोही है। मुझे क्या खाक दाद देगा वो जो केवल दरबार में बैठे-बैठे खुशामत ही सुनते रहते हैं!

तो, एक ऐसा स्थान जहां दरबार भरा जाता है; जहां दंड और क्षमा का निर्णय होता था; जहां पूरे राष्ट्र की संपदा का भी केन्द्र माना जाता था। ये कुछ स्थूल परिचय है राजधानी का।

राजधानी की व्याख्याएं हमारे देश में कई विशिष्ट मनीषीओं ने की है। मैं चाणक्य को याद कर सकता हूं, मैं विदुर को याद कर सकता हूं; इन महापुरुषों ने इनके बारे में कुछ न कुछ कहा है। ये स्थूल बात से संवाद के रूप में हम सूक्ष्म की ओर गति करें। जिस केन्द्र से प्रजा की सुरक्षा निश्चित होती हो, ऐसा एक स्थान, उसे राजधानी कहते हैं। ये तो हुई दुनिया की स्थूल राजधानी की बात। स्थूल की तो क्या ज्यादा चर्चा करे? एक प्रेमी की राजधानी कौन? एक आश्रित की राजधानी कौन? एक शिष्य की राजधानी कौन? एक साधक की राजधानी कौन? एक समर्पिता नारी की राजधानी कौन? एक समर्पित युवक की राजधानी कौन? इन सभी राजधानीओं का सूक्ष्म निर्णय करना होगा।

मेरे कलिपावनावतार पूज्यपाद गोस्वामीजी 'रामचरित मानस' का प्रारंभ करते हैं। सात श्लोकों में मंगलाचरण के बाद पांच सोरठें में वो एकदम लोकबोली में आ जाते हैं और पंचदेवों की स्तुति करते हैं। और 'रामचरित मानस' के पहले ही प्रकरण में वो गुरुवंदना क्यों करते हैं? गुरुभक्ति जो ज्यादातर गुप्त रखी जाती है। दो प्रेमी अपने प्रेम को गुप्त रखा करते हैं। आश्रित अपने आश्रयस्थान को सार्वजनिक नहीं करता। एक साधक अपनी साधना को गुप्त रखने की कोशिश करता है। और कुछ बातों को बुद्धिपूर्वक सार्वजनिक न की जाए। उसकी खुश्बू फैल जाए तो बात ओर है। सार्वजनिक करने से शायद साधक की गति थोड़ी रुक जाए।

तो, गोस्वामीजी जब लोकबोली में पंचदेवों की आराधना करते हैं, शंकराचार्य का सिद्धांत रखते हुए, जब 'रामचरित मानस' का पहला प्रकरण जब लिखते हैं और वहां से गुरुवंदना शुरू हो जाती है। क्यों? गुरुवंदना तो मंगलाचरण में कर ली ओलरेडी। और मैं तो अपनी दृष्टि से देखता हूं तो मंत्र में गुरुवंदना के सिवा है क्या? क्या माँ जानकी हमारी गुरु नहीं है? क्या शिव गुरु नहीं है? पार्वती गुरु नहीं है? गणेश गुरु नहीं है? सरस्वती गुरु नहीं है? वाल्मीकि गुरु नहीं है? हनुमानजी गुरु नहीं है? गुरुवंदना ही तो है। 'मानस' में भरत गुरु है, शत्रुघ्न मौन का मंडलेश्वर है, लक्ष्मण रामानुगामी परिव्राजक गुरु है। भरत प्रेमविश्व का गुरु है। वशिष्ठजी तो विवेक का सागर गुरु है। एक-एक गुरुजनों की ही तो महिमा लेकर 'मानस' मुखर हुआ है।

तो बाप! 'मानस' का पहला प्रकरण गुरुवंदना है। संस्कृत में हो चूकी गुरुवंदना, फिर लोकबोली में तुलसीजी गुरुवंदना करते हैं। कुछ पंक्तियां -

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।

सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती।

सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती।।

ये पूरी गुरुवंदना क्यों? हम सोचें।

शिष्य की राजधानी क्या? शिष्य को कोई राव करनी है तो किस पाटनगर में जाए? कहां वो न्याय याचे? कहां जाकर वो अपना विकास और विश्राम की कामना करे? कहां अपनी सुरक्षा निश्चित करे? गुरु और शिष्य के संबंध का जो एक आध्यात्मिक रूप है उस साम्राज्य का पाटनगर कौन? क्यों गुरुवंदना पहले? इन सभी रहस्यों को लिए 'मानस' बैठा है। मैंने कई बार मेरे श्रोताओंको मेरा आत्मनिवेदन कहा है कि जैसे-जैसे मैं रामकथा गाता जा रहा हूं, मुझे बहुत कठिन पड़ रहा है। यद्यपि गुरुकृपा से ये दुर्गम क्षेत्र भी सुगम होने लगता है। फिर भी लगता है कि उसको समझना बड़ा मुश्किल है। बिना गुरुकृपा नितांत असंभव है। हम जैसों के लिए तो चाहिए कोई परम गुरु। चाहिए अध्यात्मजगत का कोई पाटनगर।

तो बाप, अध्यात्मजगत का पाटनगर कौन? जहां शिष्य की सुरक्षा हो, जहां शिष्य का सम्यक् विकास और विश्राम हो, जहां शिष्य-आश्रित की पूरी संपदा हो? कौन है ऐसा स्थान जहां दंड कोई दूसरा भोग ले? मेरी समझ में आश्रितों के लिए पाटनगर है गुरुद्वार। गुरुतत्त्व ही पाटनगर है, राजधानी है। वहां हमारी संपदा है, वहां हमारी सुरक्षा है, वहां हमारे गुनाह को माफ़ किया जा रहा है, वहां हमें संशय से मुक्त किया जाता है। तो, मेरी खोज ऐसे पाटनगरों की है। ये तो स्थूल पाटनगर है। इसलिए मैंने पहले स्पष्टता की कि उसको अन्यथा मत लेना। जरूर, तुलसी ने भी राजधर्म की चर्चा की है।

तो मेरी समझ में, एक कारण तो ये भी हो सकता है कि गोस्वामीजी पहला प्रकरण गुरुवंदना का ले आते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं। एक कारण मेरी समझ में ये भी है। कोई गुरु मिल जाए, कोई पाटनगर मिल जाए, कोई ऐसा जंगम तीर्थ मिल जाए जो हमें कभी अकेले रहने न दे। हर पल ऐसा अनुभव हो कि कोई इर्द-गिर्द घूम रहा है। फिर मुझे वो पंक्ति याद आने लगती है -

तुम मेरे साथ होते हो,

कोई दूसरा नहीं होता ...

जहां द्वैत खतम हो गया। कौन हमारा पाटनगर? कौन सम्राट बैठा है इस पाटनगर में?

निजता नीव है, प्रेम पीठिका, अखंड अभेद दीवार,

मुक्ति द्वार है, करम किवाड है, वातायन विचार ...

इस गुरुद्वार की नीव निजता है और प्रेम जिसकी पीठिका है। अखंड अभेद दीवार। दीवार है, लेकिन भेद पैदा नहीं करती। गुरु ही हमारा पाटनगर है। वहां दीवार है, लेकिन भेद नहीं। पाटनगरों में समता होनी चाहिए। राजधानियां राग-द्वेष मुक्त होनी चाहिए।

मुक्ति द्वार है। हम जैसे आश्रितों का जो पाटनगर है सद्गुरु, वहां तो द्वार ही द्वार है। 'करम किवाड है।' हमारे कुछ करम ही खोल-बंद हुआ करते हैं। कर्म इनका कारण है। 'वातायन विचार।' गुरुगृह की खिड़कियां है विचार। नये-नये विचारों को जहां निमंत्रण है। बंदी नहीं बनाता ये पाटनगर आश्रित को। सद्गुरु कभी ये नहीं कहेगा कि मेरे सिवा कहीं ओर मत जाना। गुरु तो एक विशाल क्षेत्र है। जो बांधे वो मुक्ति की चर्चा करे तो बेकार है! इसलिए मेरी समझ में 'कंठी बांधो' ये भी कोई समझ में आए ऐसी बात नहीं है! बांधो मत।

तो बाप, 'मानस-राजधानी' की चर्चा। जहां गोस्वामीजी ने कुछ संकेत किया, मैं जरूर स्पर्श करूंगा, ये मेरा कर्तव्य है। लेकिन मूल इरादा 'असली मक्सद तो उसे रिज़ाना है।' मैं और आप साथ-साथ संवाद करते-करते सूक्ष्म की ओर बढ़ें।

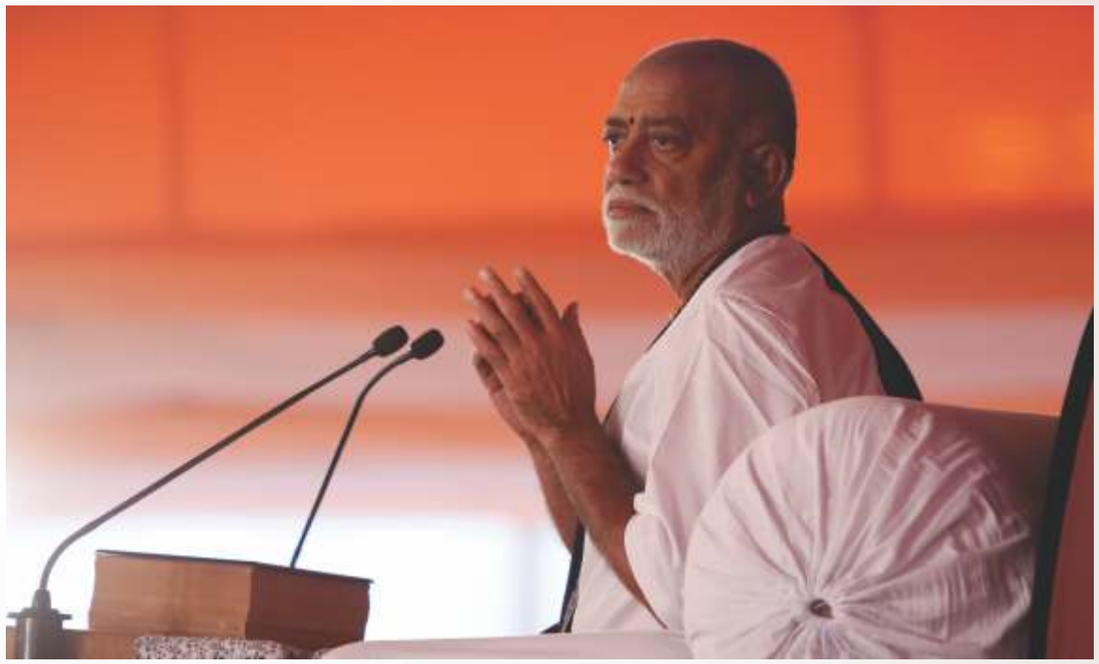

यहां गोस्वामीजी लिखते हैं, 'बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।' गुरु की वंदना है। गुरु की वंदना केवल स्थूल नहीं होनी चाहिए। ये कोई देहधारी गुरु है तो ये उनके रूप की वंदना हुई, उसके देह की वंदना हुई। लेकिन प्लीज़, मेरे भाई-बहन, गुरुरूप की ही वंदना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि स्वरूप की वंदना आवश्यक है। मैं आप से निवेदन करूं कि स्वरूप की वंदना हमारी समझ में न आए तो एक ओर बिनती करना चाहूंगा। उनके विचार की वंदना करो। उनका आचार शायद समझ में न भी आए। जरूर हम उसके स्थूल रूप को वंदे, लेकिन सूक्ष्म रूप की वंदना। स्वरूप तक की पहुंच न हो तो उनके विशाल दृष्टिकोण की वंदना। उनकी असंग जीवनी की वंदना।

तो, वंदना केवल स्थूल ही न हो। आपने कभी सोचा है उनके बारे में कि आदमी कभी किसी को प्रणाम करता है तो कोई न कोई कारण होते हैं। कभी ओशो का एक निवेदन मुझे सुनाया कि, किसी ने ओशो को पूछा कि कई लोग राजाओं को, संपत्तिवानों को प्रणाम करते हैं, आपका क्या कहना है? ओशो ने बहुत प्यारी बात कही कि वो कोई धर्मगुरुओं को थोड़ा प्रणाम करते हैं? वो कोई राजाओं को थोड़ा प्रणाम करते हैं? वो तो अपने लाभ और लोभ को प्रणाम करते हैं। ओशो कहते हैं कि ये तो अपने लोभ और लाभ को प्रणाम है। सोचो। मेरी व्यासपीठ सोचती रहती है। प्रणाम कितने प्रकार के लोग करते हैं? कभी-कभी आदमी प्रणाम करता है तो दंडवत् करता है; कभी-कभी घूटनें टेककर प्रणाम करता है; कभी हाथ जोड़ के प्रणाम करता है; कभी सिर झुका के केवल; कभी केवल आंखे झुके; कभी बहुत लोग प्रणाम करते हो तो गतानुगति भी प्रणाम करते हैं। कभी मज़बूरी प्रणाम कराती है! कभी स्वार्थ प्रणाम कराता है! कभी गुनाहों की याद प्रणाम कराती है! लेकिन शिश झुकाने के कई कारण हो सकते हैं। करो इनके स्वरूप को प्रणाम।

बहिरंग ठीक है। अंतरंग अवस्था को प्रणाम शायद विशिष्ट है। पूरे जगत के साथ नि:स्वार्थ भाव से रहने की उनकी असंग जीवनी को प्रणाम।

तो, मेरे भाई-बहन, हम किसी न किसी बुद्धपुरुषरूपी पाटनगर के नागरिक है। हमारा आध्यात्मिक परिचय यही है। तो, 'मानस-राजधानी' का मेरा इरादा है, हृदय भी एक पाटनगर है। दिल को गोस्वामीजी ने चौदह-चौदह विधाओं से भगवान का निवासस्थान बताया है। इन्सान का हृदय इस जीव की राजधानी है। दृग उनके दीवान है। किसी की याद में आंख में से आंसू गिरने लगे तो समझना दिल की पाटनगरी में किसी का अभिषेक हो रहा है। प्रेमीओं का पाटनगर हृदय है। उनकी सुरक्षा हृदय में है। प्रेम को मैं आध्यात्मिक केन्द्रबिंदु समझता हूं। तो, मेरे भाई-बहन, हृदय पाटनगर है। पाटनगर को कुछ हुआ तो राष्ट्र को तकलीफ़!

तो, मेरे भाई-बहन, 'रामचरित मानस' का पहला प्रकरण गुरुवंदना है इसके बारे में भी मुझे लगता है कि ये एक कारण हो सकता है। थोड़ा क्रम निभा लूं। गोस्वामीजी ने सबकी वंदना करते-करते -

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।

राम जासु जस आप बखाना।।

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।

जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

श्री हनुमानजी महाराज की वंदना की। पहले दिन की कथा में मैं यहां विश्राम कर लेता हूं। तो, हनुमानजी की वंदना तुलसीजी करते हैं। हनुमंततत्त्व बड़ा अगम है। गुरुकृपा हो तो सुगम से भी सुगम है। मेरी व्यासपीठ कह तो रही कि कोई गुरु न मिले फिर हनुमानजी को गुरु मान लेना। अथवा 'रामचरित मानस' को तुलसीदासजी ने गुरु कहा है तो उसके पास चले जाओ। शास्त्र स्वयं गुरु है। कोई भी ऐसा शास्त्र जो जीव को बांधे ना, मुक्त रखे ऐसा कोई भी शास्त्र गुरु है। 'भगवद्गीता' गुरु है, 'श्रीमद् भागवत' गुरु है, पवित्र 'कुर्रान' गुरु है, 'धम्मपद' गुरु है, 'बाईबल' गुरु है। इसलिए गुरुमहिमा में -

गुरु, तारो पार न पायो, हे, न पायो,

प्रथमीना मालिक, तमे रे तारो तो अमे तरीअे ...

गुरु का पार नहीं पा सकता। पार पाने की कोशिश भी मत करो, प्यार पाने की कोशिश करो।

तो बाप, श्री हनुमानजी महाराज की वंदना। सूर्य को गुरु मानो, वायु को गुरु मानो, बहते जल को गुरु मानो, पृथ्वी को गुरु मानो, आसमां को गुरु मानो। गुरु ही गुरु घूम रहे हैं चारों ओर। आप जानते हैं, क्रम में फिर सीता-राम की वंदना है। तत्त्वत: दोनों अभिन्न है वो प्रतिपादन किया गया। और फिर प्रभु के नाम की महिमा-वंदना गोस्वामीजी पूर्णांक में कर लेते हैं।

अध्यात्मजगत का पाटनगर कौन? जहां शिष्य की सुरक्षा हो, जहां शिष्य का सम्यक् विकास और विश्राम हो, जहां शिष्य-आश्रित की पूरी संपदा हो? मेरी समझ में आश्रितों के लिए पाटनगर है गुरुद्वार। गुरुतत्त्व ही पाटनगर है, राजधानी है। वहां हमारी संपदा है, वहां हमारी सुरक्षा है, वहां हमारे गुनाह को माफ़ किया जाता है, वहां हमें संशय से मुक्त किया जाता है।

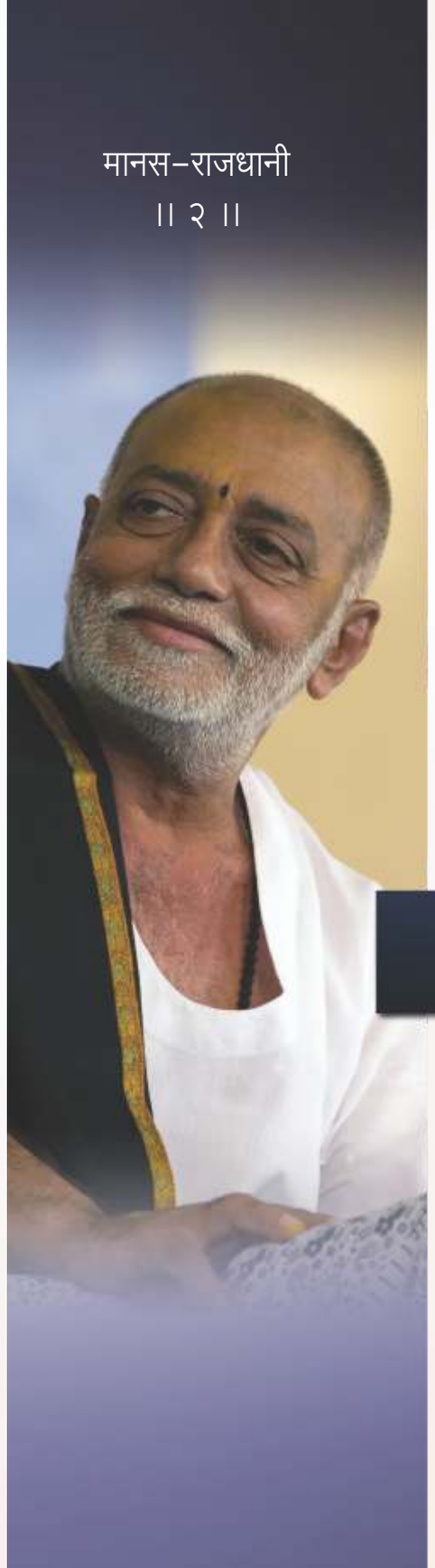

'मानस-राजधानी' को केन्द्र में रखकर हम कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में कर रहे हैं। बहुत-सी जिज्ञासाएं जो मूल विचार कथा का है, उसके संदर्भ में और अगल-बगल में जो बोला गया हो कल की कथा में, उसके बारे में भी कुछ बातें खास करके युवक जिज्ञासु ने पूछी है, उसको मैं पहले उठाउं।

''बापू, विनम्रता के साथ एक जिज्ञासा आपके समक्ष रख रहा हूं। अगर उचित समझे तो मार्गदर्शन करे। अगर किसी कारणवश शिष्य अपने आराध्य गुरु से विधिवत् दीक्षा नहीं ले पाता है, लेकिन वह अपने गुरु के प्रति सच्ची निष्ठा रखता है, गुरु के निर्देशों में से कलियुगी जीव होने के कारण पूर्णरूप से तो नहीं, लेकिन जितना संभव हो उतना पालन करता है, तो ऐसा गुरु-शिष्य संबंध कोई अलग है, या पूर्णता की कुछ कमी है?''

अवश्य, दीक्षा में, बिलग-बिलग दीक्षा में विधियां होती है। जो गुरुजन अपने पास आए हुए को विधिवत् दीक्षा देते हैं उसका एक स्थान है। मेरे भाई-बहन, मेरा ऐसा मानना है कि दीक्षा में विधि होती है, दीक्षा देनेवाले महापुरुष विधिवत् सबकुछ करते भी

मैं दीक्षा नहीं देता, दिशानिर्देश करता हूं

होंगे। मैं आपसे पूछुं कि दिशा दिखाने में कोई विधि होती है? मेरा काम केवल है दिशानिर्देशन। एक आदमी पूर्व में जा रहा है और किसी को लगा कि ये आदमी गुमराह है, सही मारग पर नहीं है ओर जानेवाले को भी आशंका हुई कि शायद मैं रास्ता भूल गया हूं! गज़ल की एक पंक्ति है -

जिन्हें रास्ते में खबर हुई कि मेरा रास्ता कोई और है।

मैं खयाल हूं किसी ओर का, मुझे सोचता कोई ओर है।

जिसको रास्ते में पता लगा, आशंका हुई कि शायद मेरा मारग गलत है। और नदी-नांव संजोग कोई अस्तित्व की करुणा से

कोई आदमी उसको मिल गया। और उसने उसको बता दिया कि आप जहां जाना चाहते है ये मारग वहीं नहीं ले जाएगा, आप मूड जाईए, मैं आपको राह दिखाउं। खडे-खड़े दिखा दे। उसमें क्या कुछ विधि है कि सफेद वस्त्र पहन लो, बैठ जाओ, चंदन लाओ। क्या किसी भूले पथिक को राह दिखाने में कोई विधि होती है? गुरुजन जरूर दीक्षा देते होंगे। मैं इसका अनादर नहीं करता। अब आपने पूछा है तो मेरी बात भी आपको बता दूं। मुझे एक आचार्य अभी कुछ एक-दो महिने पहले पूछ रहे थे। कि, 'आपने विधिवत् दीक्षा ली है?' मैंने कहा, महाराज, आपने कहां ये प्रश्न पूछा? हमने प्यार पाया है। विधिवत् दीक्षा देनेवाला यदि आप दीक्षा के मार्ग पर ठीक न चलो तो नाराज भी होता है, लेकिन जिन्होंने विशुद्ध अनुराग से सराबोर कर दिया वो यदि आपकी गोद को बिगाड़ भी दे तो वो ही बच्चे को माँ ओर प्यार करती है। मुझे कोई ऐसी दीक्षा नहीं दी मेरे दादाजी ने। क्यों दीक्षा की राह देख रहे हो? 'गीता'वचन है, 'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा।'

तो, ये दीक्षावाला क्षेत्र जरूर महापुरुषों की परंपरा में रहा है। अखबारो में भी मैं पढ़ता हूं कि फलां महापुरुषों ने एक साथ पांच सौ युवकों को दीक्षा दी! गाडर कातरवा जेवी वात छे! लेकिन मैंने तो कल भी कहा कि मैं कोई गुरु हूं ही नहीं। मैं केवल आपके साथ बस बोलता हूं तो यहां बैठता हूं।

मेरे पास आज एक प्रश्न यह भी आया कि, 'आपकी कथा से वी.आई.पी. पास कब निकल जाएगा?' व्यासपीठ के शबद पर ध्यान दीजिएगा, व्यक्तिओं पर मत दीजिएगा। यदि आप कथा के ही लिए आए हैं तो, एक मानसिकता बनाकर आए हैं तो, आपकी शिकायत नहीं रहेगी। लेकिन आप न जाने कितने-कितने मन में कुछ न कुछ लेकर आएंगे तो फिर सब रहेगा! यहां से कहा जाएगा कुछ और आप समझेंगे कुछ!

न जाने कौन-से माहोल से वो हो के आया है,
मैं बिस्मिल कहता हूं और वो कातिल समझता है।

- 'मासुम' गाज़ियाबादी

मुझको मालूम नहीं हुश्न की तारीफ़ 'फराज',
मेरी नज़रों में हसीन वह है जो तुझ जैसा हो।

- अहमद फराज़

मैं श्रोता चाहता हूं। आप राग में व्यासपीठ के करीब आएंगे, तो कभी न कभी व्यासपीठ से द्वेष करोगे ये अवश्यंभावी है। दोनों सापेक्ष है। मेरी प्रार्थना है, आप न राग से आओ, न द्वेष से आओ, आप सिर्फ श्रोता बनकर आओ। एक empty heart, नितांत शून्य हृदय। राग-द्वेष की दुनिया कहीं और रखो। मुझे नव दिन दो, मैं नवजीवन दूंगा। मैं ओर कोई मांग नहीं करता। मेरे मन में व्यासपीठ पर बैठते हुए आपके प्रति राग होगा और आपके प्रति द्वेष होगा उसी क्षण मैं व्यासपीठ छोड़ दूंगा। मुझे मेरे आनंद के लिए गाना है। मुझे अपनेआप को उड़ेलना है। मुझे निंद नहीं आती ऐसा नहीं, मैं चाहूं तो उसी क्षण सो सकता हूं, उसी क्षण जाग सकता हूं। लेकिन मैं जागता रहता हूं और मेरे गुरु की कृपा पाता रहता हूं। कोई हेतु नहीं है आपके और मेरे बीच। किसको क्या मिला, किसको क्या न मिला, छोड़ो! तुम्हारे फेफडे में जितनी ताकत हो उतनी ओक्सिजन लो। आप बहुत देर कर रहे हैं जीवनयात्रा में।

आप सोचिए। ये नव दिन मिले हैं। इसमें हम जरा खाली होकर आये। ईश्वर जिस तरह राग-द्वेष मुक्त हमसे मोहब्बत करता है, वैसे हम उससे मोहब्बत करे।

'हेतु रहित अनुराग रामपद।' तुलसी कहते हैं, राम के चरणों में मेरा हेतुरहित अनुराग हो। मैंने कल भी कहा, कथा कोई हेतु के लिए नहीं है, केवल हेत के लिए है।

तो बाप, दीक्षा की विधि होती है। दिशा दिखाने में कौन विधि? दिशानिर्देश पाने के लिए विधि की जरूरत नहीं, केवल जो दिशा दिखा रहा है उस पर विश्वास की जरूरत है। विधि नहीं, विश्वास। और आप पूछ रहे हैं कि क्या ये गुरु-शिष्य संबंध कोई बिलग प्रकार का है? अवश्य। उसको कोई नाम देने की ज़रूरत नहीं है। केवल उसे महसूस करो, नाम मत दो। तो, ये बात आज पूछी गई। जिस विचार को केन्द्र में रखकर हम इस कथा में 'स्वान्तः सुखाय' बोल रहे हैं, सुन रहे हैं, उसके बारे में ऐसी जिज्ञासाएं है।

तो, मेरे भाई-बहन, गंगा में जब आप स्नान करने जाते हैं और कुदकर स्नान कर लिया तो क्या आप गंगा को पूछते हो, 'तुमने मुझे कबूल किया कि नहीं?' आत्मा किसी की शरणागत हो जाए, फिर उसीसे सर्टिफिकेट प्राप्त करने की जरूरत नहीं है। कृष्णमूर्ति से किसी ने पूछा कि, 'आप क्यों बोले जा रहे हैं? बहुत टोक दी है आपने।' तो, कृष्णमूर्ति ने कहा कि, 'फूल जब खिलता है, तो फूल को तो आप नहीं पूछते कि आप क्यों खिले?' ऐसी हमारी सहज क्रिया भगवद्कृपा से हो।

तो, मेरे भाई-बहन, 'मानस-राजधानी'। अब मैंने जो दो पंक्तियां ली है, उसमें पहली पंक्ति में प्रतापभानु का ज़िक्र है, दूसरी पंक्ति में रावण का ज़िक्र है। एक प्रकाश का प्रतिनिधि है, दूसरा अंधेरे का प्रतिनिधि है। प्रतापभानु राज्य का उत्तराधिकारी है, राजधनी है। प्रकाश की एक पूरी विचारधारा है, जो उत्तराधिकारी है। कौन उत्तराधिकारी? कौन राज्य के लिए योग्य है? जो उज़ाले में जी रहा हो, जो अंधेरे का वारसदार न हो। और रावण अंधेरे का प्रतिनिधित्व करता है। और कमाल तो यह है कि यही प्रतापभानु दूसरे जनम में रावण हो रहा है! उज़ाला कब अंधेरे में चला जाए पता नहीं लगता! भावेश ने वो शे'र सुनाया था कि जो नदियों को भी चलना सिखाता था वो जल में डूब गया, बड़ा आश्चर्य है!

एक पान खरे तो अमने फरक पडे छे,
कोई दीवो ठरे तो अमने फरक पडे छे.

ये है संतों की समानुभूति। हजारों प्रकाशवर्ष सूरज है, लेकिन डूबता है तो हमारे नेत्र मुंद जाते हैं, फरक पड़ता है। मेरे भाई-बहन! कितना परिवर्तन! और ये जनम और उसके बाद दूसरा जनम, कोई लंबा फायदा नहीं है। संशोधन का विषय है ये। संशोधन को अवकाश होना चाहिए। और मूल मनीषा नाराज नहीं होती। जिन महापुरुषों ने निवेदन किया वो कभी नाराज नहीं होंगे। तुम तीन श्रेणी में फेईल हो गए हो, तुम्हारा बेटा ग्रेज्युएट हो जाए तो तुम राजी हो कि नाराज़ हो? हम जो संशोधन नहीं कर पाए और कोई नई पीढ़ी शास्त्र संशोधन कर दे, यदि भाष्य पर अपनी मेधा के द्वारा कुछ नई बात जो योग्य हो, तथ्य और सत्य से मिली हो, ऐसी बात प्रस्थापित करे तो कट्टरता क्यों? वेद-शास्त्र विशुद्धिकृत होने चाहिए। वक्ताओं के लक्षण में 'भागवत'कार ने कहा है कि वक्ता कैसा होना चाहिए, जो वेद-शास्त्र को बार-बार संशोधित करे।

तो बाप, जितना जीवनोपयोगी है, ले लो। कब प्रकाश अंधेरे में चला जाए! कहां प्रतापभानु, प्रकाश का प्रतिनिधि, वो ही रावण बनता है! निशिचरवंशी बन गया, अंधेरे का प्रतिनिधि बन जाता है! ये तो कालांतर है। लेकिन 'महाभारत' में तो उसी युग में, उसी पल में

ऐसा हुआ कि सूर्य का बेटा अंधेरे के बेटे की मैत्री करता है! सूर्य का बेटा कर्ण, धृतराष्ट्र के बेटे दुर्योधन की मैत्री करता है! कब कहां क्या हो! पल में जी लो। उसी में हरि सिमर लो। और एक वस्तु जरूर ढ़ाढ़स देती है कि जिसका भजन प्रबल है उसको मुश्किल नहीं होती। हमारे यहां गुजराती का बहु प्यारा पद -

जेनी सुरता शामळियानी साथ ...

'सुरता' बड़ा प्यारा शब्द है। मूल तो कबीरसाहब का शब्द है। अब कबीर के बारे में भी बहुत कहा जाता है कि वो ज्ञानमार्गी थे, बड़े निर्गुणी थे। कबीरसाहब जैसा रसिक संत मिलना मुश्किल है। आज ही मैं एक किताब देख रहा था तो मुझे कबीर की पंक्तियां मिली तो मैंने लिख ली -

बालम, आओ हमरे गेह,

तुम बिन दु:खिया ये देह।

कितने रसिक महापुरुष है कबीर! और हम बिना समझे प्रेमरस का निरादर कर देते हैं! सावधानी जरूरी। मौका आया तो फ़राज़ का एक और शे'र सुन लीजिए -

हम अपनी रुह तेरे जिस्म में छोड़ आए 'फ़राज़',

तुझे गले से लगाना तो एक बहाना था।

ओर एक शे'र सुनो -

बच न सका मोहब्बत के तकाज़ों से खुदा भी 'फ़राज़',

एक महबूब के खातिर सारा जहान बना दिया।

व्यर्थकाल मत गंवाना। कब प्रकाश अमावस्या की यात्रा करे! और वो ही रावण, अंधेरे का प्रतिनिधि, वो ही आदमी एक ऐसा आया, भगवान राम तो सूर्य के प्रतिनिधि है, सूर्यवंश में आये हैं, 'तासु तेज समान प्रभु आनन', यही अंधेरा राम के मुखचंद्र में पूरा का पूरा समा गया! प्रतीक्षा करो, प्रमाणपत्र मत दो। हम सब संसारी लोग तुरंत निर्णय दे देते हैं! खुद को देखो, खुदा मिलेगा।

तो, यहां जो राजधानी की चर्चा है; 'रामायण' में कई राजधानी है।

भोगावति जसि अहिकुल बासा।

अमरावति जसि सक्रनिवासा।।

पाताल में भोगावती सर्पकुल की राजधानी है। लेकिन -

तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका।

जग बिख्यात नाम तेहि लंका।।

सर्पकुल की राजधानी पाताल में भोगावती। सबके आध्यात्मिक अर्थ है। अमरावती इन्द्र की राजधानी। दोनों से अत्यंत रम्य ये लंका, जहां अंधेरे का प्रतिनिधि बैठा है। मिथिलांचल की राजधानी मिथिला, जहां विदेहराज जनक निवास करते है। नगाधिराज हिमालय की राजधानी हिमालय। एक राजधानी काल्पनिक थी, लेकिन बड़े परमात्मा के विभूति को भूलावे में डाल दिया ऐसी काल्पनिक राजधानी का 'रामचरित मानस' में अस्तित्व है, शीलनिधि की राजधानी। ये सब हमारी राजधानियां है। मैं उसकी बातचीत करूंगा। ये सब हमारी अवस्थाओं का नाम है। महाराज दशरथजी की राजधानी अवधपुरी। एक आध्यात्मिक राज्य है तीरथराज प्रयाग, जिसकी राजधानी है चित्रकूट। बंदरजाति की राजधानी है किष्किन्धा। रावणादि राक्षसों की राजधानी है लंका। मेरे भुशुंडि की राजधानी है नीलगिरि। और सबसे श्रेष्ठ राजधानी वो है मेरे भोलेबाबा शंकर की राजधानी कैलास। लेकिन उसमें एक राजधानी तुलसी लिखते हैं -

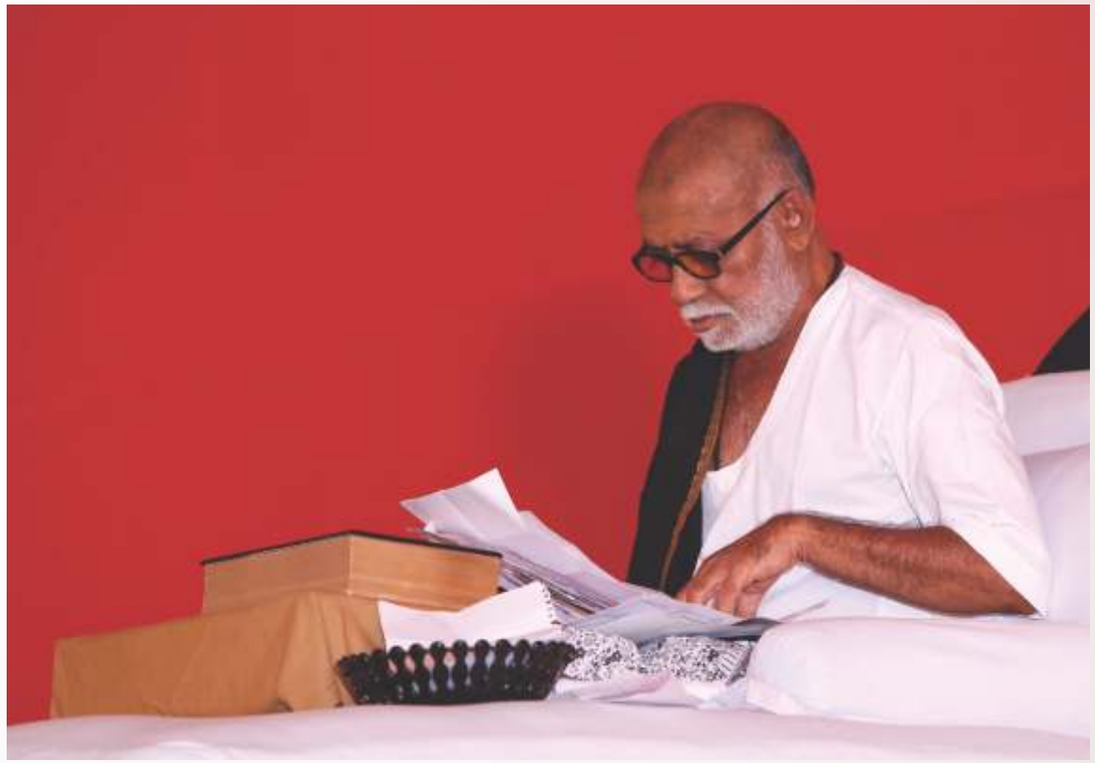

राजा रामु जानकी रानी।

आनंद अवधि अवध रजधानी।।

चित्रकूटरूपी राजधानी में अयोध्या के नागरिक भगवान से प्रार्थना करते हैं कि एक बार राम राजा हो जाए, जानकी रानी हो जाए, आनंदअवधि। ओर फिर वो देखकर हम मर जाए! अवध राजधानी के लोग ऐसी एक नई राजधानी चाहते थे, जो प्रेम की राजधानी है।

तो, कितनी राजधानियां है! सबके अपने-अपने दायरे है। सबका अपना-अपना लक्षण है। सर्प का काम क्या है? वो डंसता है। केवल डंसता ही है? डंसता ही नहीं, नाचता भी है, कोई मुरली बजाए। लेकिन ये नाचवाला पक्ष एक ओर कर दो, जो सर्प है वो दूसरों को डंसता है। दूसरों को डंसने की जिसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है उसकी राजधानी है भोग। 'भोगावति जसि अहिकुल बासा।' जो एक-दूसरों को डंसते हैं, कभी संपत्ति के लिए, कभी कुछ के लिए एक-दूसरों को ओवरटेक करते हैं! लेकिन लोग ऐसे चालाक हो गए हैं कि डंसनेवाले सांप भी मार खा गए! जो दूसरों को डंसने का जीवनपर्यंत मानो व्रत लेकर बैठे हैं, दूसरे के जीवन का भोग लेते हैं, ऐसे सर्पी मानसिकताओं की राजधानी है भोगावती और उसका स्थान है पाताल, निम्न। वो नीचे रहते हैं। कई लोग है जिसके जीवन में केवल भोग ही प्रधान है, उसकी राजधानी सदैव भोगावती ही रहती है। भोग शारीरिक आवेग है, उसका अनादर न किया जाए, लेकिन मेरे देश के ऋषिमुनियों ने बहुत सुंदर, एक स्वाभाविक नियमावली दी कि थोड़ा संयम में जीया जाए। नाचो, लेकिन मंच का खयाल रखो।

लोभी आदमी सदैव धन की चिंता करता है। और कामी आदमी सदैव तन की चिंता करता है। शरीरधर्मी चाहता है अमरावती। उसका लक्ष्य है अमर होना।

जरा मरन दु:ख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।

लोभी को धन की चिंता। कामी को तन की चिंता। 'अमरावति जसि सक्र निवासा' सामान पहले जाता है, फिर वी.आई.पी. जाता है। इसी रूप में निराशा न आए, मृत्यु को महोत्सव बनाया जाए। कृष्ण ने कहा 'मृत्यु' मैं हूं। 'महाभारत' में तो मृत्यु एक बड़ी खूबसुरत, सुंदर स्त्री है। परमात्मा ने एक स्त्री के रूप में मृत्यु बनाया। एक अति रमणीय स्त्री। और इतनी सुंदर स्त्री, सबको मारने जाए तो उसको रास नहीं आया। एक स्त्री है मृत्यु, बहुत सुंदर वर्णन किया है भगवान व्यास की लेखनी ने। एक बार 'महाभारत' की मृत्युनारी के विषय में आप पढ़ लेंगे, मरने की इच्छा हो जाएगी! मृत्यु महोत्सव है। मृत्यु ही कुछ बाबतों की मोक्ष है। डरना मत। मृत्यु प्रभु की विभूति है। आये तो सन्मान करो।

धन्य आजनी घडी ते रळियामणी,

मारो व्हालोजी आव्यानी वधामणी हो जी रे ...

भगवान वशिष्ठ ने जो छ बस्तु भरतजी को विधिहाथ बता दी, ये विधि के हाथ में, लेकिन उसका कुछ और विपरीत सूत्र हमारे हाथ में है।

हानिलाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ।।

हानि तुम्हारे हाथ में है, लेकिन कितनी भी जीवन में हानि हो, हम कभी निराश नहीं होंगे, वो हमारे हाथ में है। लाभ तुम्हारे हाथ में है, शुभ हमारे हाथ में है। जीवन तुम्हारे हाथ में है, लेकिन जीवन एन्जोय करना वो हमारे हाथ में है। मरण तेरे हाथ में है, लेकिन तेरा स्मरण मेरे हाथ में है। शिवमंगलसिंह 'सुमन' कहते हैं -

मैं क्षिप्रा की तरह सरल-तरल बहता हूं।

मैं कालिदास की शेष कथा कहता हूं।

मुझे मौत भी डरा नहीं सकती,

मैं महाकाल की नगरी में रहता हूं।

मृत्यु महोत्सव है। यश तेरे हाथ में है, लेकिन तूने दे दिया तो बांटना मेरे हाथ में है। और अपयश तेरे हाथ में, तो बदनामी मिली तो भी मुस्कुरा रहूंगा वो मेरे हाथ में है। तो बाप, सावधान जरूर रहे, जाग्रत रहे। भगवान कृष्ण ने कहा, मृत्यु भी मैं हूं, अमृत भी मैं हूं। अब इतना आश्वासन सिर्फ हिन्दुस्तान ही दे सकता है। तो क्यों डरे? स्मरण करे। तो बाप, व्यर्थकाल मत गंवाना।

दीक्षा में विधि होती है, दीक्षा देनेवाले महापुरुष विधिवत् सबकुछ करते भी होंगे। लेकिन दिशा दिखाने में कोई विधि होती है? मेरा काम केवल है दिशानिर्देशन। एक आदमी पूर्व में जा रहा है और किसी को लगा कि ये आदमी गुमराह है और उसने बता दिया कि, 'आप जहां जाना चाहते है ये मारग वहीं नहीं ले जाएगा, आप मूड जाईए, मैं आपको राह दिखाउं।' उसमें क्या कुछ विधि है कि सफेद वस्त्र पहन लो, बैठ जाओ, चंदन लाओ। क्या किसी भूले पथिक को राह दिखाने में कोई विधि होती है?

मानस-राजधानी

॥ ३ ॥

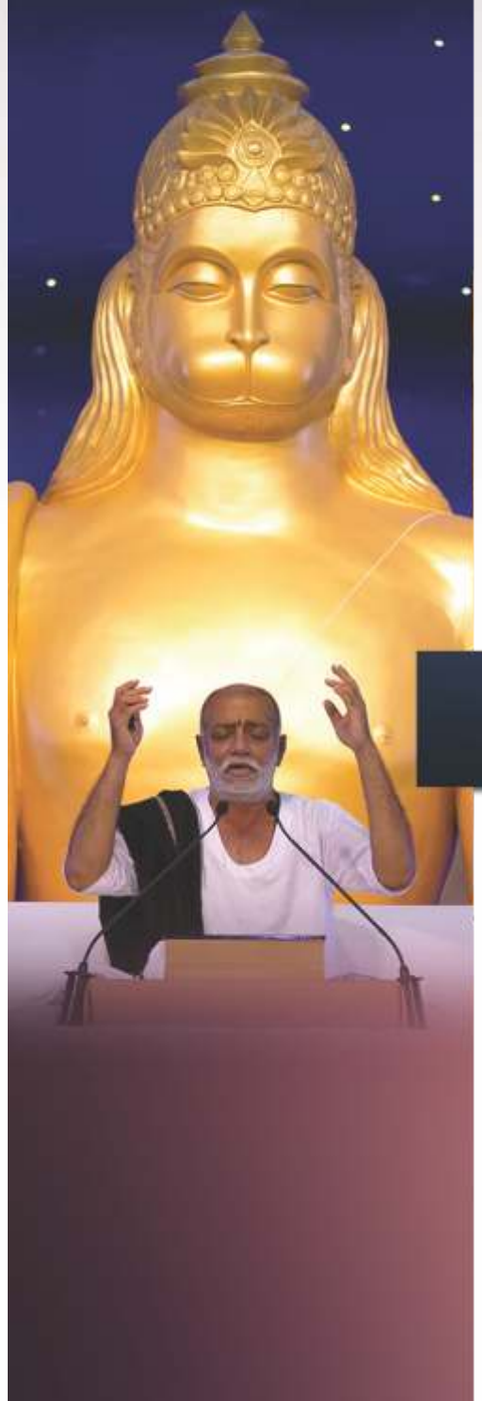

'मानस-राजधानी' इस विषय को, इस विचार को केन्द्र में रखते हुए 'रामचरित मानस' के आधार पर हम कुछ भगवद्चर्चा करते हैं। प्रशांत और प्रसन्न चित्त से सुनिए। रोज की तरह बहुत प्रसंग अनुकूल और व्यक्तिगत तौर पे भी कुछ जिज्ञासाएं आती है। स्वागत है। यथावकाश और यथामति मैं कोशिश करूंगा। लेकिन एक बात खास पहले कह दूं। 'बापू! व्यवस्था में परिवर्तन कर दिया गया है। पहले आओ, पहले स्थान लो और वी.आई.पी. बनो।' स्वागत है इस विचार का। और इस विचार को चरितार्थ करने की प्रामाणिक कोशिश करो। धन्यवाद।

एक श्रोताने पूछा है, ''आप राजधानी की चर्चा करते हैं। हमें ओर राजधानियों में कोई इन्टरेस्ट नहीं है। आप बता दे आपकी राजधानी क्या है?'' अच्छा प्रश्न। आप मेरे अपने हैं, अपने की तरह पूछ रहे हैं। मैं स्वागत करता हूं। बिलकुल दो-टूक यदि जवाब दूं तो संसार में जहां कथा होती है वहां मेरी राजधानी है, अन्य कोई राजधानी नहीं। और वो भी 'मानस' के अनुकूल है -

अवध तहां जहँ रामनिवासू।

तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।।

राजधानियां प्रचारक हो, उद्धारक हो और नितांत स्वीकारक भी हो

बाप! हमारा दिन वहीं होता है, जहां सूरज होता है। हमारी राजधानी वहीं, जहां रामकथा हो। और रामकथावाली राजधानी का ये सूत्र बिलकुल अनुकूल है -

सुंदर सहज अगम अनुमानी।

कीन्हि तहाँ रावन रजधानी।।

क्योंकि राम सहजसुंदर है, अवध सहजसुंदर है, सदैव सुहावनी है। रामकथा भी जहां होती है, मेरे लिए सहजसुंदर है, मुझे उसका शृंगार नहीं करना पड़ता, वो तैयार होकर जाती है। मेरे उपकरणों से

रामकथा नहीं सज़ाई जाती, वो अपनेआप कैलास के उत्तुंग शिखर से नीचे ऊतरती है। हम पंगु वहां नहीं पहुंच पाते, हमारे घर तक ही नहीं, घट तक आई है। ये सहजसुंदर है मेरी दृष्टि में। यहां कोई वक्ता का तनिक भी प्रयास नहीं है। नदी को बहाने के लिए पम्पिंग नहीं करना पड़ता, नदी सहज बहती है।

और 'अगम अनुमानी।' बहुत दर्शन के बाद, पहले दिन भी मेरा निवेदन था, 'अगम' भी लगती है। बड़ी अगम कथा है। केवल गुरुकृपा ही उसके रहस्यों को खोल पाती है। प्रयास से नहीं होता, प्रसाद से होता है। और बाप, मेरी दृष्टि में राजधानी के तीन सूत्र होने चाहिए। मान मत लेना। सुनना, सोचना जरूर।

राजधानी का एक लक्षण होता है, यद्यपि ये बिलकुल स्थूल लक्षण है, लेकिन वहीं से शुरू होती है यात्रा। राजधानियां प्रचारक होती है। ये उसका लक्षण है। ये प्रचार करती है। कोई कहे कि, इतने साल हो गई, दिल्ही हरियाली नहीं हुई! कोई कहे कि आपको पता नहीं, दिल्ही पहले से हरियाली है! ऐसे निवेदन आ रहे हैं! बहिर्रूप में प्रचारक होती है राजधानियां। स्थूल को प्रचार करना पड़ता है। खुश्बूओं को कोई प्रचार नहीं करना पड़ता। खुश्बू अपनेआप फैलती है। लेकिन राजधानी का एक अंग है प्रचारकता। प्रचारक होनी चाहिए, माना। लेकिन एक साधु के नाते व्यासपीठ पर बैठा हूं तब बहुत जिम्मेवारी के साथ कहूंगा कि वहां रुके मत। राजधानी प्रचारक तो हो, लेकिन राजधानी उद्धारक भी हो। ये दूसरा सोपान है। राजधानी उद्धारक हो। पहले स्थूलरूप में समझ लें।

राजधानी अर्थजगत की उद्धारक हो। राजधानी धर्मजगत की उद्धारक हो। राजधानी सामाजिक व्यवस्था की उद्धारक हो। राजधानी का कर्तव्य और दायित्व है वो साहित्यजगत की भी उद्धारक हो। मेरी समझ में ये नहीं आता इतना महत्त्व क्यों दिया जा रहा है हर चीज को? एक व्यक्ति सेवा करता है, कुछ बिछाता है, बस सलाम करो, बात खतम! ये उनका कर्तव्य है। इससे ज्यादा क्या? एक सिपाही चौराहे पर खड़ा है, दायें-बायें करता है, ट्राफिक कंट्रोल करता है, उसको सलाम करो, उसकी बात मानो, बात खतम! गुजर जाओ। वहां पात्र और कलश लेकर चरणप्रक्षालन की जरूरत नहीं है। वैसे छोटा पदाधिकारी, ऊंचे से ऊंचे पद पर बैठा अधिकारी वो अपना दायित्व निभाए, बात खतम! और क्या? आदर और सन्मान तो मज़दूर का होना चाहिए, किसान का होना चाहिए, जो सृजनात्मक है। धर्मजगत का भी इतना क्यों पांव पखारना? ये उनका दायित्व है। स्टेशन मास्तर आपको टिकट दे मुंबई की, तो क्या उसको दंडवत् करोगे? ऐसे धर्मपुरुष भी किसी मंच पर बैठे। ये मंचों की भी बड़ी बलिहारी है! कौन उपर बैठा, कौन नीचे बैठा...! सबसे उपर बैठने की स्पर्धा क्यों? क्या फ़र्क पड़ता है? मेरे साथ ऐसी घटनाएं बहुत घटती है!

बाप, आपत्ति नहीं होनी चाहिए। परिन्दें और बहुत उपर उड़ते हैं, हवाई जहाज इससे भी उपर उड़ते हैं। यद्यपि गिरनेवाले हैं फिर भी नक्षत्र बहुत उपर है। सितारे गिरते हैं, बहुत उपर है। इस छोटी-सी जीवनी में स्पर्धा क्यों? लेकिन राजधानियां स्पर्धा में! जिस राजधानी को किसी असंग महापुरुष का संग नहीं, जिस राजधानी में विशुद्ध भगवद्भजन नहीं और जिस राजधानी में आखिर के व्यक्ति के उद्धार की मनीषा नहीं वो राजधानियां विफल हो जाती है।

तो, मंचों की अपनी बलिहारी होती है। जिद्द क्यों? राजधानियों का कर्तव्य है, वो सामाजिक उद्धारक हो, आर्थिक उद्धारक हो, साहित्यिक उद्धारक हो। सबका अपना-अपना दायित्व है। धर्मजगत अच्छा है, अवश्य, उसकी एक ऊंचाई है। लेकिन ये भी उनका दायित्व है। सन्मान विशेषत: मिलना चाहिए मज़दूर को, किसान को, जो सृजन करते हैं। और सृजन करनेवाले को कम मिलता है! विशेषता दो किसी चित्रकार को, विशेषता मिलनी चाहिए शिल्पकारों को जो एक अनघड़ पथ्थर से बुद्ध निर्माण करता है। यद्यपि मूर्ति एक रूप है, स्वरूप का आरोपण करना पड़ता है। लेकिन रूप भी कोई कम नहीं। यात्रा तो रूप से ही होगी। सीधे कैसे कूदोगे? मेरे भाई-बहन, चित्रकार, शिल्पकार, साहित्यकार, संगीतकार; यस, एक सर्जक है, हाथ में कलम लेकर दुनिया को कुछ नया दे रहा है।

मेरे भाई-बहन, राजधानियां को चाहिए उद्धारक हो। लेकिन ये भी अधूरा है मेरी समझ में। ये सब व्यक्तिगत विचार है, प्लीज़। मैं आप से निवेदन करूं कि सुने वो भी बहुत। सोचे जरूर। चुनने को आत्मा कहे तब चुनना, वर्ना छोड़ देना। मैं कोई बेचने नहीं आया, आप कोई खरीदने नहीं आए। वस्तु मैदान में रखी है, केवल परखो।

बाप, मैं निवेदन कर रहा हूं, राजधानियों को उद्धारक होना चाहिए, लेकिन वो भी पूर्णता नहीं है। मुझे कहने दो, आंतरिक हो या बहिर् हो, राजधानियों को प्रचारक होना ठीक है, उद्धारक होना जरूरी है, लेकिन नितांत आवश्यक है, राजधानियां स्वीकारक हो। कुबूल करनेवाली हो। साधु भी ऐसा होना चाहिए। प्रचारकता साधु को छूती नहीं। लेकिन साधु उद्धारक होना चाहिए, स्वीकारक होना चाहिए। जो उद्धार करे, अच्छी बात है, लेकिन सामुदायिक साधना का क्या? विनोबाजी कहते थे, सामूहिक उत्थान का क्या? विनोबाजी जब गए रामकृष्ण परमहंस ठाकुर के स्थान में, कलकत्ता, तो उसने कहा कि, 'क्या ये ध्यान सामूहिक नहीं हो सकता?' अच्छा विचार पेश करते थे ये महामुनि। आज तक हम कथाकार अकेले गाते थे। मैं क्यों आपको शरीक कर रहा हूं? यद्यपि कथाओं में बोलने की मना थी। कथा में सिर्फ yes man ही बैठते थे! 'हरे हरे' ही बोलते थे! श्रोता को शरीक नहीं बनाया गया। कोई बीच में बोलता था तो उसको आक्रमक होकर कहते थे, 'नरक जाओगे!' मानो नरक उनकी जेब में हो! यद्यपि होता ही है। क्योंकि वो स्वर्ग लिए नहीं घूमते, नरक लिए ही घूमते हैं!

जिसको किसीसे कोई आकांक्षा नहीं, और किसी के प्रति न राग, न द्वेष। केवल विशुद्ध अनुराग, विशुद्ध त्याग। जो प्रेम का अनुगमन करता है। जो किसी का द्वेष नहीं करता। द्वेष भयंकर दुश्मन है, याद रखना। निरंतर साधना को काटता है। एक ओर हमारी साधना बढ़ती है, एक ओर हमने करवत लगाई रखी है, जो निरंतर काटती है! करवत दोनों ओर से काटती है। द्वेष खुद पर तो भी मरे, द्वेष अन्य पर तो भी मरे। विनोबाजी ने अच्छा कहा, तुम्हारे में दोष ही देखते हो? गुणदर्शन करो। तुम में बहुत अच्छाई है। अरे! अच्छाई क्या, दुनिया की सर्व श्रेष्ठ अच्छाई कृष्ण बनकर तुम्हारे हृदय में बैठी है। उसकी निंदा क्यों? अहमदाबाद से 'राजधानी' ट्रेईन चलती है। 'राजधानी' में बैठना और पहूंचना कहां? राजधानी। भजन में बैठना और पहूंचना कहां?

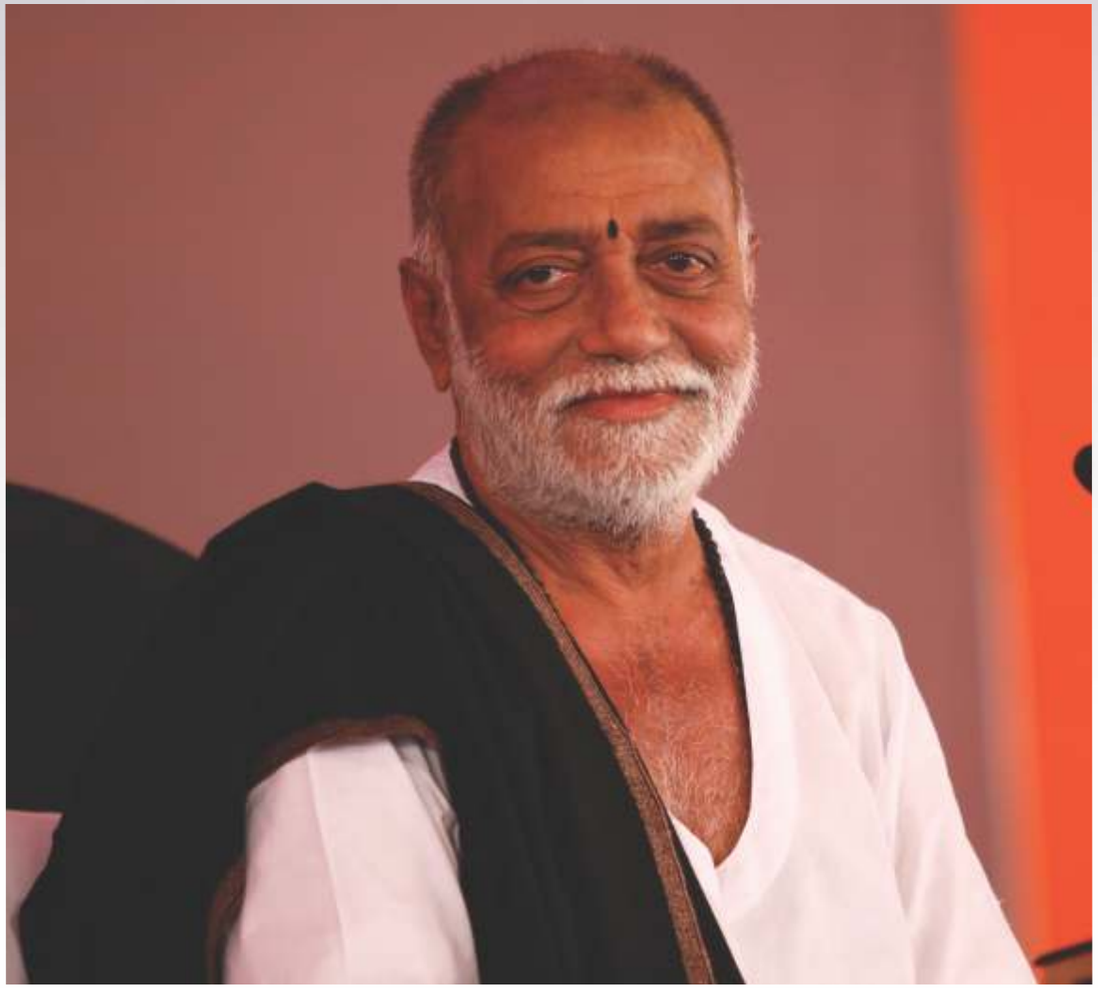

भजन। भजन साधन भी है, साध्य भी है। भजन को केवल साधन नहीं समझना। भजन साध्य है। कुछ समय उसको साधन की तरह लेना पड़ता है। क्यों इतनी निंदा देह की? और ध्यान देना। बहुत देहवादी है वो ही देह की निंदा बहुत करते हैं। एक बहुत सर्वोत्तम अच्छाई मेरे में है उसका गुणदर्शन किया जाए। जीवन के एक स्तर में आकांक्षा बंद हो। अब कहां पहुंचना है? जहां पहुंचने की हम कामना करते हैं वहां ओलरेडी हम होते हैं। परख नहीं। कौन महत्त्वकांक्षा? मेरे श्रावक भाई-बहन, बहुत सोचिए। परखो केवल। सामूहिक साधना। जरूर व्यक्तिगत साधना है, स्वतंत्रता है। लेकिन समय की मांग है, समूह को लिए चलो, 'संगच्छध्वम्।'

बाप, दायित्व है, उद्धार करना। लेकिन उद्धारक स्वीकारक न बने तो? 'भागवत' लो या 'महाभारत' लो। पाटनगर का नाम था भोमासुर। ज्योतिषपुरम् उसकी राजधानी थी। भोमासुर, कृष्णकालीन एक सम्राट। सोलह हजार बिलग-बिलग

राजाओं की स्त्रीओं पर एकाधिकार कर लिया था। गवाह है भारत का इतिहास। और भगवान श्रीकृष्ण को जब पता लगा और कृष्ण आते है वहां। साहब! सोलह हजार बंदीवान स्त्रियां, अटारी से देख रही है कि कोई उद्धारक आया है। और इस उद्धारक के दर्शन में, आगे का कदम भूल ही गई कि शून्य हो गई! और मेरे भाई-बहन, यह भोमासुर और दुर्योधन से तो मेरा रावण भी कहीं गुना अच्छा था! दुर्योधन ने चीरहरण किया! क्या ऐसा होना चाहिए सभ्य समाज में?

मैं लाओत्सु के सूत्र कहने जा रहा था। लाओत्सु का एक बहुत प्यारा सूत्र है, 'बच्चा जन्मता है तब कोमल होता है और कमजोर होता है। जहां कोमलता और कमजोरता है, वहां ही जीवन होता है। मौत आती है तब बच्चा कठोर बन जाता है।' द्रौपदी भी बहुत सख्त है। कठोर बोलती भी है। लेकिन जब तक ये सख्त रही और कठोर रही, किसी न किसी रूप से चारों ओर से आक्रमण का भोग बनी। और यहां एक वस्त्र को खींचने की चेष्टा हो रही है और अपने को बचाने को भरपूर प्रयास में याज्ञसेनी है। और याद रखना, भगवान व्यास का एक वक्तव्य कि सत्यवान व्यक्ति को आप निर्वस्त्र कर सकते हैं, नग्न नहीं। द्रौपदी को निर्वस्त्र करने की कोशिश की जा रही थी, वो भी नहीं हुआ। बहुत सख्त थी द्रौपदी। लेकिन पराजय की ओर क्रमशः जा रही थी। इसलिए लाओत्सु का सूत्र बहुत प्यारा लगता है, 'जीवन वहां होता है, जहां कोमलता है।' कमजोरी का मतलब यहां कायरता नहीं। कमजोरी मतलब निराभिमान, कर्तृत्व का निषेध। एक क्षण आती है और द्रौपदी ने सोचा कि अब मेरे बचाने से कुछ नहीं होगा, सख्ती छोड़ दी। घूमने लगी। तब द्रौपदी को लगा, मैं नहीं घूम रही, सुदर्शनचक्र घूम रहा है। और चक्र है तो द्रौपदी ने सोचा, चक्रधारी भी होगा। यही कोमलता, यही कर्तृत्वशून्यता फिर जीवन देगी। सख्ती मृत्यु की निशानी है। हर किसम की कठोरता मृत्यु है।

लाओत्सु का सूत्र बहुत प्यारा है। ऐसी एक क्षण आती है और लाओत्सु का कहना है कि जो कोमल है और कमजोर है वो सदा उपर है और जो कठोर है वो सदा नीचे है। इसलिए सोलह हजार उपर है, भोमासुर नीचे है। ये निर्दोष महिलाएं उद्धारक को देखती है। उसी समय शून्यमनस्क हो गई कि हमारा उद्धार तो होगा, लेकिन अब स्वीकारक का प्रश्न होगा। स्वीकार कौन करेगा? समाज की नियमावली में माँ-बाप भी स्वीकार नहीं करेंगे।

मेरे भाई-बहन, कृष्ण इन महिलाओं का उद्धार भी करते हैं और स्वीकार भी करते हैं। राजधानियों का ये कुछ लक्षण होना चाहिए। इन सूत्रों को परख लो। राजधानी प्रचारक हो स्वाभाविक है, ठीक है; लेकिन राजधानी उद्धारक हो और नितांत आवश्यक सूत्र है राजधानी स्वीकारक हो। मेरा एक वक्तव्य है, मेरा काम सुधारने का नहीं है, मैं स्वीकार का काम करता हूं। राम ने किन-किन को नहीं स्वीकारा? यहां तो कृष्ण ने सब का स्वीकार कर लिया, वर्ना वो समाज में स्थापित करता। अहल्या का उद्धार राम ने किया, स्वीकार करवाया गौतम के पास।

तो बाप, अपनी राजधानी वहां होनी चाहिए, जहां हम है। झोंपड़ा राजधानी बन सकता है। एक दर्भासन राजधानी बन सकता है। जहां है हम, हमारी राजधानी वहां है। आपके मन में तर्क उठेगा कि मैंने कह

दिया कि जहां रामकथा वहां मेरी राजधानी। बिलकुल। ये जंगम राजधानी है। लेकिन फिर भी आपको संतोष न हो तो आपको पूछने की भी जरूरत नहीं, यदि मेरी व्यासपीठ को सुनते हैं। यदि मैं इन तीनों का नामकरण कर दूं, तो राजधानी है सत्य, प्रेम और करुणा। कहां स्थित है? सत्य जबान में, प्रेम हृदय में और करुणा आंखों में।

तो, आंख में करुणा की राजधानी। हृदय में प्रेम की राजधानी और जीवन अथवा जबान में सत्य की राजधानी। गुरुकृपा से प्रामाणिक प्रयास होने चाहिए। और मैं आपको ये भी छूट दूं, वैसे इन सूत्रों का कोई विकल्प नहीं है, फिर भी यदि सत्य हम न निभा पाए, जीव है हम, सत्य इधर-उधर होता है। वही आंखें जो स्वीकार करने की अभ्यस्त होनी चाहिए, वो तिरस्कार करती है, लेकिन मेरे प्यारे श्रोता भाई-बहन, आप पर मेरी ममता है इसलिए प्रेम को मत भूलो। प्रेम होगा तो सत्य आएगा, करुणा आएगी। प्रेम को पकड़ रखो। क्यों? -

राम हि केवल प्रेमु पिआरा।
जानि लेउ जो जाननिहारा।।

●

प्रेमलक्षणाभक्ति जेने प्रगटी तेने
करवुं पडे नहीं कांई रे.

- गंगासती

इस गुजराती भजन में गंगासती कहती है कि जिसके हृदय में प्रेमलक्षणाभक्ति प्रगटी हो उसको ओर कोई साधन नहीं करना पड़ता। श्रीमन् महाप्रभुजी भगवान वल्लभाचार्य कहते हैं, निस्साधनता। वल्लभ का ये मंत्र है, निस्साधन। इसीलिए तो सूरदास ने आश्रयपद में गाया -

दृढ इन चरनन केरो भरोसो, दृढ इन चरनन केरो,
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन, सब जग मांहे अंधेरो ...

भरोसा। मैंने दो-तीन बार सुनाया कि निझामुद्दीन ओलिया बैठे थे। सायंकाल का समय था। अपनी दरगाह के पास वो जहां बैठते थे वहां एक नियम-सा था कि सायंकाल को लोबान का धूप किया जाए। वो ड्यूटी अमीर खुशरो की थी। एक दिन अमीर भूल गया या तो किसी कार्य में व्यस्त रहा तो धूप करना भूल गया। और पंद्रह मिनिट के बाद उसने देखा तो लोबान की खुश्बू आ रही है! तो, वो सोचने लगा कि मैं तो चुक गया, बाबा को लोबान अग्नि में डालना पड़ा होगा! तो बड़ी ग्लानि हुई। और पीर के पास जाकर कहता है, 'बाबा! मुझे माफ करे।' 'क्या?' 'आज मैं भूल गया और समय पर धूप तो होने लगा। आपको खड़े होकर धूप करना पड़ा!' तब निझामुद्दीन पीर ने कहा, 'मैं तो खड़ा ही नहीं हुआ! ये तेरे डिब्बे का लोबान नहीं था, ये मेरे भरोसे का लोबान था।' विश्वास की एक अपनी खुश्बू होती है। तुलसी भी ऐसी जबान में बोलते हैं -

नहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम-फलनि फरोसो।।

तो, मूल में ये भरोसा है। ये विश्वास है सत्य, प्रेम और करुणा के प्रति। तो, राजधानी के बारे में सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा चल रही है। उसको यहां रोकते हुए, कुछ कथा का प्रसंग लेते चलें। परसों हम सीतारामजी की वंदना तक पहुंचे थे और फिर नामवंदना तक रुक गए थे। नाम की बात आती है तो कोई ज्यादा-कम की बात नहीं है, लेकिन आखिर में तो मेरा भरोसा नाम पर है। बोलते तो हैं, लेकिन कभी-कभी लगता है कि क्या ये शब्द का खेल तो नहीं है? आखिरी संदेश तो हरिनाम है। गोपियों तो श्रुतिरूपा थी, लेकिन सब बातें जानते हुए भी आखिर में तो उनके पास एक ही वस्तु थी, नाम। जयदेव ने भी आखिर में क्या कहा? एक पत्ता भी हिलता है कि कदंब पर कृष्ण के चरण हिल रहे हैं! फिर मुझे वो पंक्ति याद आती है -

जरा-सी आहट सी होती है।
तो दिल सोचता है, कहीं ये वो तो नहीं?

ये गोपीगीत है, ये गोपीभाव है। मीरां, कबीर, नरसिंह सब गोपी है। हनुमानजी भी गोपी है। मुझे लगता है, कोई भी आदमी नर्तन करे कृष्ण के नाम पर तो सब गोपी है। जरूरी नहीं कि गोपी के लिए स्त्रीशरीर हो। नारद गोपी है, शुकदेवजी स्वयं गोपी है। और कहने दो महादेव भी गोपी है। सब गोपी है। मेरा एक वक्तव्य था, मोरारिबापू भी। हम सब गोपी है। एक परम पुरुष है केन्द्र में और पूरा संसार नर्तन कर रहा है।

तो, ये गोपियां सब जानती थी, लेकिन उनकी आखिरी पुकार तो नाम था। हरिनाम की महिमा, नामनिष्ठा। ये चारों युग का श्रेष्ठ, सरल और सफल साधन है, हरिनाम। क्या-क्या चर्चा करे? नाम ले लो। हम जैसों के लिए यही उपाय है। बाकी तो गाते हैं, बोल लेते हैं, लेकिन 'असली मक्सद उसे रिज़ाना है, शायरी तो सिर्फ बहाना है।' बाकी उनके पास तो -

अजब पाकीज़गी उसकी, उसे छूने की सोचूं तो,
मैं अपनी ही निगाहों में किसी मुजरिम सा लगता हूं।

- राजकौशिक

सब बहाने हैं। गोविंद थोड़ा प्रसन्न हो जाए। ये हर सर्जक, हर बोलनेवाला, हर विधाओं से गुजरनेवाला का एक ही मात्र एक अंतिम मक्सद होता है कि तू राजी रहे।

निझाम के नाम पर छोटे-छोटे प्रसंग है। एक दिन अमीर बैठा है और निझामुद्दीन बैठे हैं। अमीर कहता है, 'बाबा, आपकी बंदगी के बारे में लोग तरह-तरह की चर्चा कर रहे हैं, मैं क्या करूं?' छोटी-सी बात, लेकिन पते की बात। उठ गए निझामुद्दीन, 'हे खुदा!' अमीर को लगा मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, पीछे-पीछे गया। निजकुटियां में गए। वहां जाकर पैर पकड़े। कहा, 'तू मेरे पास रहकर भी अभी नहीं जागा? कोई कुछ भी कहे, तुम केवल 'अल्लाह अल्लाह' करते रहो। यही मेरा जवाब था।' प्रभु को सिमरो। यहां किस-किस को जवाब देने जाओगे? सीता भी यहां बदनाम हुई। छोड़ो बेकार की बातें। इसलिए हरिनाम।

राजधानी का एक लक्षण है, यद्यपि ये बिलकुल स्थूल लक्षण है, राजधानियां प्रचारक होती है। राजधानी प्रचारक तो हो, लेकिन राजधानी उद्धारक भी हो; ये दूसरा सोपान है। राजधानी अर्थजगत की उद्धारक हो, राजधानी धर्मजगत की उद्धारक हो, राजधानी सामाजिक व्यवस्था की उद्धारक हो, राजधानी का कर्तव्य और दायित्व है वो साहित्यजगत की भी उद्धारक हो। लेकिन नितांत आवश्यक है, राजधानियां स्वीकारक हो, कुबूल करनेवाली हो। साधु भी ऐसा होना चाहिए। प्रचारकता साधु को छूती नहीं। लेकिन साधु उद्धारक होना चाहिए, स्वीकारक होना चाहिए।

मानस-राजधानी
॥ ४ ॥

'मानस-राजधानी।' बाप! भूलचूक हो जाए तो सुधार लेंगे, लेकिन 'रामचरित मानस' में कुल मिलाकर नव बार 'रजधानी' शब्द का प्रयोग हुआ है। नव तुलसी का प्रिय अंक है। मैं आगे भी जाता हूं, मेरे प्रिय अंकों में ग्यारह भी है। तो, इस रूप में हम 'मानस-राजधानी' का संवाद कर रहे हैं। चाणक्य हो या महात्मा विदुर हो या भर्तृहरि हो या राजनीति के क्षेत्र में जिन्हों ने अपने विचार प्रस्तुत किए है।

सर्वसामान्य मत ऐसा है कि राज्य में राजा के पास इतनी बस्तु होनी चाहिए। पहले स्थूल रूप में राजधानी जहां हो वहां एक उसका छोटा-बड़ा मुल्क होता है, प्रदेश होता है। एक नगर को भी राजधानी हो सकती है। दूसरा, राजा होना चाहिए। लोकशाही की पद्धति में कोई प्रजा ने जिसको चुना हो ऐसा कोई नेता होना चाहिए। एक और स्पष्टता भी करूं कि आज मेरे श्रोता ने पूछा है कि 'बापू, राजधानी में शासन करनेवाले शासक अर्थनीति, विकासनीति, ऐसी कई नीतियां बनाते हैं। जबकि संभवत: अध्यात्मनीति की कमी के कारण हमारे मंत्री हनुमानजी जैसे रामदूत एवं सुग्रीव जैसे राजदूत नहीं बन पाते।'

अध्यात्म ये स्वातंत्र्य और मुक्ति का बहुत बड़ा उत्सव है

बाप! राजनीतिज्ञ लोग अध्यात्मनीति गठित करे ये असंभव है। ये अपेक्षा मत करो। ये उनका क्षेत्र नहीं है। सबको अपना-अपना क्षेत्र होता है। यद्यपि राज्य में अध्यात्म होना चाहिए; सत्य, प्रेम, करुणा होनी चाहिए। जिस राजा में सत्य न हो, खुद के लिए; जो राजा प्रजा को प्रेम न करता हो, जो राजा के दिल में जन-जन के प्रति, सबके प्रति, अस्तित्व के प्रति करुणा न हो, जिस राष्ट्र में अस्तित्व के हर पहलू प्रदूषित हो वहां चाहिए कोई वरिष्ठ व्यक्ति, विशिष्ट व्यक्ति, उसीको मैं वशिष्ट कहता हूं। अध्यात्मनीति होनी चाहिए, लेकिन गठित करनेवाले दूसरे होते हैं! मुझे कोई राजनीति को स्पर्श नहीं करना है, मेरा क्षेत्र भी नहीं है, लेकिन व्यासपीठ सभी को छू सकती है। तो बाप, हमारे यहां ये संविधान आया कि लोकसभा में जिसको प्रजा चुने वो सदस्य बैठे, लेकिन जो रह जाते हैं उनके लिए राज्यसभा। राज्यसभा का मतलब क्या था हमारे संविधान में कि वहां विशिष्ट व्यक्तिओं को चुन-चुन के बिठाया जाए। असली हेतु यही था। कोई संगीतज्ञ, वाद्यकार, चित्रकार, शास्त्रकार, चिंतक, दर्शक, जो बिलकुल राजनीति से बिलग होकर केवल राष्ट्रप्रीति में जिसकी आस्था हो और सब कर्म करता हुआ भी कर्म से लिप्त न हो।

आज एक भाई ने मुझे पूछा है, 'बापू, आप कर्मयुक्ति में मानते हैं कि कर्ममुक्ति में मानते हैं?' अब मुझे पूछा है तो मैं आप से बिनती करूं, मेरी एक पूरी कोशिश है, कर्मयुक्त रहते हुए भी हम कर्ममुक्त हो सकते हैं। छोटी-सी फॉर्म्यूला। बोला जाए सो अनुभव, न बोला जाए वो अनुभूति, ऐसा मेरा स्पष्ट मानना है। अनुभूति का स्टेशन अभी न भी आया हो, लेकिन अनुभव के पड़ाव पर मेरी ट्रेइन खड़ी है, इसीलिए मैं आप से कह सकता हूं। छोटी-सी फॉर्म्यूला। और ये मेरी जेब से निकली हुई ऐसी नहीं, 'श्रीमद्भगवद्गीता' से मैंने कुछ चुना है इनमें से एक ये है। और मैं प्रार्थना करता हूं, कहीं से भी बंधना मत। सभी से सत्य लेना, बंधना मत। मेरे पास कई लोग आते हैं तो उसको संतुष्टि नहीं होती, जब तक मेरा जवाब उनके गुरु ने जो कहा है ऐसा न हो! अध्यात्म तो स्वातंत्र्य और मुक्ति का बहुत बड़ा उत्सव है। किसी की स्वाधीनता को छिनना हिंसा है, अपराध है। आपके बच्चों की स्वाधीनता बरकरार रहे। हां, मार्गदर्शन करो। तुम्हारे बच्चे को ये भी दबाव मत डालो कि इसको गुरु बना। गुरु चुनने का उसको अधिकार दो। हां, जरूर पवित्र परंपरा का वो स्वाभाविक अनुगमन करे तो प्रणाम, लेकिन जबरदस्ती क्यों? मेरा एक वक्तव्य है कि भोजन करने में यदि स्वतंत्रता है, तो भजन करने में पाबंदी क्यों? आदमी की स्वतंत्रता कोई पीठ छीने ना। स्वातंत्र्य अस्तित्व का वरदान है।

मेरे भाई-बहन, पूरे संसार में रहकर हम कर्ममुक्त हो सकते हैं। छोटी सी फॉर्म्यूला। ये 'गीता' की बात है। युक्त होकर मुक्त रहा जा सकता है। ये मेरी प्रयोगात्मक बात है। यस। जब कर्मसिद्धांत कहता है कि एक क्षण भी कोई कर्म के बिना नहीं रह सकता तो कैसे कर्म से मुक्त? बिलकुल छोटी-सी फॉर्म्यूला। 'यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सर:।' छोटा-सा सूत्र। सीखो मेरे भाई-बहन, मैं करबद्ध प्रार्थना करता हूं। कर्म की जाल में रहते हुए भी कर्ममुक्त रहेंगे। और ये कोई बड़ी गहन बात नहीं है। 'मेरी कोई इच्छा नहीं फिर भी मुझे जो मिल जाए उसमें मैं संतुष्ट रहूं।' वैश्विक सूत्र है। कर्म की पूरी शृंखला में जीव रहे तो भी कर्म से मुक्त है। आप दौड़-दौड़ करते हैं, मैं आपसे कई दूना ज्यादा दौड़-दौड़ करता हूं। मेरे आचार्य थे, जब मैं पढ़ता था, महेता साहब। वो मुझे कहते, 'बापू, मुसाफरी का टेक्ष यदि सरकार लगाए तो सबसे ज्यादा तुम्हें भरना पड़ेगा!' और मैं कोई अकारण तो नहीं घूमता, ये कर्म ही तो है। लेकिन 'यदृच्छालाभसंतुष्टो ...' तुलसीदासजी ने और सरलता से लोकबोली में कह दिया -

आठवँ जथालाभ संतोषा।
सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।
नव महुँ सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हियँ हरष न दीना।।

भाष्यकारों ने भी यही अर्थ निकाला है। जो द्वंद्व है, द्वंद्व तो बहुत है, सुख-दु:ख, मिलना-बिछड़ना आदि-आदि। लेकिन यहां है द्वंद्व का अर्थ हर्ष-शोक। सीधे-सादे चार सूत्र। ये कोई धार्मिक प्रक्रिया नहीं, कर्मकांड नहीं है। इसमें कोई धर्म बदलने की जरूरत नहीं है। तुम काम करो, दिल लगाकर काम करो, लेकिन बिना इच्छा परमात्मा जो पद दे, पैसा दे, प्रतिष्ठा दे इसमें संतुष्ट हो जाओ। प्रामाणिक प्रयत्नों के बाद जो मिले, बिना आशा, जब कोई भी किसी से किसी भी प्रकार की आशा किए बिना कर्म करेगा, उसके परिणाम में जो कुछ होगा उसमें संतुष्ट जीवन जीएगा, वो कर्म करते हुए कर्ममुक्ति की फोर्म्यूला का प्रथम सूत्र। दूसरा, जीवन में हर्ष और शोक के प्रसंग हम सबके जीवन में आते हैं। वर्तमान में जो हर्ष-शोक आए उसका स्वागत करो। और यहां 'अतीत' शब्द है, जो भूतकाल में घटना घट गई। भूतकाल में हर्ष आया, अब कैसा आएगा उसकी कामना मत करो। और भूतकाल में शोक हुआ, भूल जाओ। जरा मुश्किल पड़ेगा, क्योंकि हम इन द्वंद्व से आबद्ध है। लेकिन आनंद बहुत आएगा। क्या कोई साधु-संत, कोई विशिष्ट व्यक्ति के जीवन में हर्ष-शोक के प्रसंग नहीं आते होंगे? लेकिन वो उसको अपने दिल तक पहुंचने नहीं देते। एक सूत्र याद रखना, जो आता है, जाने के लिए ही आता है। इस दुनिया में हम आये हैं तो एक दिन हम जायेंगे। ये नियम है। दु:ख आया है, जाएगा। तो, हर्ष-शोक आते रहते हैं।

अलग ही मज़ा है फ़कीरी का अपना,
न पाने की चिंता, न खोने का डर है।

- दनकौरी साहब

हर्ष-शोक की कोई परवा नहीं। क्या ऐसा जीवन हम नहीं जी सकते? इसमें कोई दीक्षा की जरूरत है? इसमें कोई मंत्र जपने की जरूरत है? कदम उठाने की जरूरत है। कठिन बहुत है। लेकिन कर सकते हैं। और तीसरा, इससे भी ज्यादा कठिन, किसी की इर्ष्या न करो, द्वेष न करो। कर्म करते हुए कर्म से मुक्त होना है तो उपाय हाज़िर है। आपको दूसरों का द्वेष और इर्ष्या निरंतर करना है और कर्म से मुक्त भी रहना है! नहीं। सोचो। चौथा, सिद्धि और असिद्धि में जो समान रहे वो कर्म करते हुए भी कर्म से मुक्त। तुमने पूरी क्लास एटेन्ड की है, होमवर्क किया है और फिर भी यदि आप परीक्षा में सफल नहीं हुए तो आपके प्रामाणिक प्रयासों से आनंद ले। सफलता या असफलता पूरे प्रयत्नों के बाद आये, सम रहो। केवल चार सूत्र है। ये चार मंगलफेरा फ़रो, कृष्ण से शादी हो जाएगी।

पहला, जो आए इच्छा के बिना, संतोष। हर्ष-शोक के द्वंद्व से परहेज। किसी का द्वेष-इर्ष्या नहीं। और सफलता-निष्फलता में हम सम रहे। 'कृत्वापि न बन्ध्यते।' 'अर्जुन! ऐसा आदमी भरचक कर्म करे तो भी कर्म से मुक्त रहता है।' 'गीता' जीवनग्रंथ है। केवल स्वाध्याय करना पर्याप्त नहीं है, स्वानुभव जरूरी है। मेरे भाई-बहन, इस रूप में हम कर्म से मुक्त रह सकते हैं।

फिर भी हम संसारी है, हम न रह पाए फिर भी अपनी आत्मा को इतना दंडित न करो। जितना हुआ उसमें आनंदित रहना। तो, मेरे भाई-बहन, भरोसा रखो। भरोसा रखो तो पूरा रखो।

तो, अब हम आगे बढ़ें। राजधानियों में विकासनीति, राजनीति, अर्थनीति आदि बनाई जाती है, अध्यात्मनीति बनानी चाहिए। लेकिन ये सबका क्षेत्र नहीं है। उसके लिए चाहिए कोई वरिष्ठ, वशिष्ट, विशिष्ट। और हमारे संविधान में राज्यसभा की जो बात थी उसमें कुछ बिलग-बिलग क्षेत्र से लोग चुनकर भेजने की बात थी। कभी समर्थ साहित्यकार उमाशंकर जोशी थे वो जो लोकसभा या राज्यसभा में कुछ ऐसी गड़बड़ होती तो 'भागवत' की बात करते हुए सभी को चूप कर देते थे। अध्यात्मनीति के लिए चाहिए सत्ता से एक प्रामाणिक डिस्टन्स रखनेवाले बुद्धपुरुषों की। हमारे प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नहेरुजी और जब पहली पंचवर्षीय योजना बनी तब एक प्रतिनिधिमंडल को भेजा गया था दिल्ही से विनोबाजी के आश्रम में कि हमें कैसी पंचवर्षीय योजना बनानी चाहिए। तो, मेरा कहना यही है कि ऐसे किसी बुद्धपुरुषों की राय जरूरी है, वो किसी अध्यात्मनीति दे सकते हैं।

तो, मेरे भाई-बहन, राजधानियों के कुछ लक्षण। तो, राजा हो, रानी हो, प्रदेश हो, कोश हो, खजाना हो, सेना हो, अच्छे सचिव हो। ऐसी कुछ राजनीति से सुव्यवस्था के लिए जुड़ी हुई बातें अनिवार्य है। दुर्ग हो, अच्छे सलाहकार हो, अच्छे मंत्री हो। ये हुई स्थूल राजधानी की चर्चा। अब आईए, आध्यात्मिक राजधानी, जिसका तुलसी ने एक सुंदर दार्शनिक पक्ष रखा है।

सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू।

बिपिन सुहावन पावन देसू।।

भट जम नियम सैल रजधानी।

सांति सुमति सुचि सुंदर रानी।।

चित्रकूट के महिमा का गायन करते हुए कलिपावनावतार पूज्यपाद गोस्वामीजी निवेदन कर रहे हैं, ये चित्रकूट शैल राजधानी है। ये बिलकुल आध्यात्मिकदर्शन। चित्रकूट के बार में गोस्वामीजी के बहुत अभिप्राय है। कभी व्यक्तिगत कहते हैं, चित्रकूट एक औषधि। 'कूट' का एक अर्थ है लोहे की एरण। उस पर गरम किया हुआ लोहा रखकर घन के घाव डालो तो लाल-लाल लोहा जो आप आकार देना चाहो वो आकार दे सकते हैं। लेकिन जो एरण है वो आकार नहीं बदलती कभी। और गोस्वामीजी ने चित्रकूट का एक आध्यात्मिक अर्थ देते हुए कहा, 'चित्रकूट चित्त चारु।' हमारे अंत:करण की चार विभावना, उनमें से जो चित्त है वो चित्रकूट है। तो, एरण की तरह जरा भी हिलेहुले ना ऐसा चित्त, ऐसी चित्तअवस्था, चित्तप्रबोध। चित्त का चांचल्य मिट जाए ये आध्यात्मिक जगत के साधकों की राजधानी है।

मेरे भाई-बहन, श्रोता और वक्ता के कुछ लक्षण। कथा सुनो तब मन की प्रसन्नता के साथ सुनना। यहां से कुछ कहा जाए ओर ऐसी कोई बात हममें दिखाई दे तो ऐसा मत समझना कि हम तो संसारी है। नहीं, मन की प्रसन्नता रखो। इसलिए मैं कहता हूं, प्रसन्न और प्रशांत चित्त से कथा सुनो। वक्ता भी प्रसन्न होना चाहिए। कथा सुननेवाला बुद्धिपूर्वक सुने कि जो कहा जा रहा है उसमें से मुझे कितना उपयोगी है। और वक्ता को भी

सभानता रहे कि इस मेहफिल में क्या बोलना चाहिए। विचारपूर्वक सुना जाए, केवल अंधश्रद्धा से न सुना जाए। 'कथा सुने तो स्वर्ग मिले!' मैं आप से साफ कर दूं, कोई स्वर्ग-बर्ग नहीं है! कथा के लिए कोई सांसारिक प्रलोभन नहीं है। कथा सुनो तो जीवन में आनंद आ जाएगा।

तो, बुद्धि विचारणा करके सोच-समझकर वक्ता बोले और श्रोता सुने। और फिर 'चित्रकूट चित्त चारु।' चित्त अपनेआप निरोध होने लगे। कभी-कभी कथा के कोई प्रसंग आए तो आंख में आंसू आए तो इसका मतलब है, चित्त निरोध होने लगा, चांचल्य मिट गया। हम उस काल में चले जाते हैं। देश-काल को ओवरटेक कर लेते हैं। इसलिए 'मानस' में एक ऐसा भी वक्तव्य है, 'श्रोता वक्ता ग्याननिधि।' जैसे तुलसीजी ने लिखा है कि तीन प्रकार के जीव होते हैं। श्रोता भी तीन प्रकार के होते हैं। यद्यपि उसमें एक बात मैं अपने ढंग से कहा करता हूं ये बात और है। बाकी 'अयोध्याकांड' का ये अमृतवचन -

बिषई साधक सिद्ध सयाने।

त्रिबिध जीव जग बेद बखाने।।

गोस्वामीजी का वक्तव्य है कि तीन प्रकार के जीव होते हैं - विषयी, साधक और सिद्ध। वैसे वक्ता भी तीन प्रकार के होते हैं - विषयी, साधक और सिद्ध। केवल भोगों की कामना के कारण कथा सुने ऐसे श्रोता विषयी है। यद्यपि वक्ता को विषय नहीं छोड़ना चाहिए, विषयांतर नहीं करना चाहिए। लेकिन विषय की भी परतंत्रता नहीं होनी चाहिए। दिल में जो उगे वो कहता चले। वक्ता भोगों के लिए न बोले।

तो, ये तीन श्रेणी है। तीन प्रकार से कथा सुनी जाती है। वक्ता भी ऐसा होता है। वक्ता बोले तो केवल सुखों के लिए भी बोल सकता है, क्योंकि वो जीव है। या तो वक्ता भी साधक होते हैं, जो बोलते-बोलते खुद का समाधान करता रहता है और फिर वक्तव्य सिद्ध हो जाता है। विषाद खतम! श्रोता रजोगुणी, तमोगुणी, सत्त्वगुणी होता है। रजोगुणी श्रोता वो है कि जो अपनी जगह अपना आसन कोई छू ले तो भी मुंह बिगड़े! वक्ता बोले उनसे पहले बोले! तमोगुणी श्रोता कौन? जो गुस्से में बैठे। सत्त्वगुणी श्रोता वो है जो शांति से हरिरस पीता है। लेकिन मेरी अपेक्षा है कि हमारी व्यासगादी को त्रिगुणातीत श्रोता मिले तब कथा का रूप कोई और हो जाएगा। लेकिन मैं आपको ही सुनाऊं ऐसी बात नहीं है। वक्ता भी तीन गुण आवृत्त होते हैं। वक्ता भी रजोगुणी होते हैं। मैंने मार्क किया है, कुछ वक्ता मेकअप करके आते हैं! कोई-कोई वक्ता तमोगुणी होते हैं, श्रोताओं को डांटते ही रहते हैं! लेकिन व्यासपीठ चाहती है एक ऐसा भगवद्कथा में रूप आए कि श्रोता गुणातीत हो और वक्ता भी त्रिगुणातीत हो। गुणातीत श्रोता को शुद्ध श्रोता कहते हैं। गुणातीत वक्ता को शुद्ध वक्ता कहते हैं। न वो विषयी है, न वो साधक है, न वो सिद्ध है, केवल वो शुद्ध है।

तो, मेरे भाई-बहन, आध्यात्मिक दर्शन में गोस्वामीजी चित्त को चित्रकूट कहते हैं। तो, गोस्वामीजी एक आध्यात्मिक राजधानी का निरूपण करते हुए कहते हैं, अध्यात्मजगत की राजधानी है अलोल चित्त, विक्षेपमुक्त चित्त। राजा कौन है? तुलसी कहते हैं, विवेक। आध्यात्मिक पाटनगर का सम्राट है विवेक। अपना विवेक सम्राट है। और विवेक आता है धीरे-धीरे जितना समय मिले, सत्संग करते-करते विवेक की उपलब्धि होती है। भगवान की कथा सुनने-गाने को

मिले ये रामकृपा से होता है, प्रयास से नहीं होता। लाख आप चाहो तो भी यदि भगवद्कृपा नहीं तो कथा नहीं सुन पाते, गा पाते। सत्संग की प्राप्ति हरिकृपा से होती है। भगवान की कथा सुनने को मिले, गाने को मिले ये रामकृपा से होता है, प्रयास से नहीं होता। कई लोग नहीं कहते कि हमारे यहां ही कथा थी, लेकिन इन्हीं दिनों में ऐसा काम आया कि हमें जाना पड़ा! इसका मतलब, कारण तो बराबर लेकिन ऐसे कारण क्यों आ पड़े? क्योंकि अभी हरिकृपा नहीं हुई है। कृपा के अवकाश में कारण पैदा होते हैं। कृपा हो जाए तो कार्य-कारण सिद्धांत समाप्त। आप इतने शांति से सुन रहे हैं ये भगवद् कृपा का नगद दर्शन है। हमारे पर तो है ही। क्योंकि हमारे लिए तो कथा ही कथा है। कथा ओढता हूं, कथा बिछाता हूं, कथा खाता हूं, कथा पीता हूं, कथा में उठता हूं, कथा में सोता हूं। हिन्दी कविता जगत का एक बहुत प्रसिद्ध शायर दुष्यंतकुमार, जो छोटी उम्र में चला गया, उसने कहा था -

मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूं,

वो गज़ल आपको सुनाता हूं।

तो, बिना हरिकृपा सत्संग उपलब्ध नहीं है। भगवद्कृपा से सत्संग मिलता है। सत्संग से विवेक मिलता है। लेकिन अब प्रश्न उठता है कि भगवद्कृपा हो कैसे?

मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई।

भजत कृपा करिहहिं रघुराई।।

कृपा कैसे हो? गोस्वामीजी कहते हैं, मन-वचन और कर्म से आदमी चतुराई छोड़े, होशियारी छोड़े, तो कृपा उतरे। तो, राजधानी है अलोल चित्त। सम्राट है विवेक। लेकिन दीवान अच्छा होना चाहिए। मंत्रीपरिषद अच्छी होनी चाहिए। विवेकरूपी सम्राट के मंत्री कौन? तो बोले, 'सचिव बिराग।' वैराग्य ही सचिव है। मंत्री वैरागी होना चाहिए, रागी नहीं। हमारे भारत की वस्ती १२५ करोड। लेकिन इतनी बस्ती में से हम ७०-८० वैरागी मंत्री नहीं निकाल पाए! मैं किसी की आलोचना नहीं करता हूं। चाहिए मंत्री चाणक्य जैसा। एक कुटिया बनाकर रहता था।

तो बाप, आध्यात्मिक राजधानी में वैराग्य उनके मंत्री है। वैराग्य का मतलब ये नहीं कि सब छोड़ देना। मेरा एक वक्तव्य कायम रहा, हाथ से छूटे सो त्याग और हृदय से छूटे वो वैराग। तो, वैराग्य सचिव है आध्यात्मिक राजधानी का। विवेक सम्राट है। और 'बिपिन सुहावन पावन देसू।' तुलसीदासजी ने देश की परिभाषा करते हुए कहा, देश है बिपिन। देहाती प्रदेश, जंगल। केवल आज़ादी नगरों में ही नहीं बसनी चाहिए, देहातों में बसनी चाहिए, बिपिन तक जानी चाहिए। पेड़-पौधें तक ये स्वातंत्र्य जाना चाहिए। वन्यसंस्कृति ये राष्ट्र है; खेत राष्ट्र है; तालाब राष्ट्र है; नदियां राष्ट्र है।

भट जम नियम सैल रजधानी।

सेना कैसी होनी चाहिए? सुभट्ट कैसा होना चाहिए? तुलसी आध्यात्मिकदर्शन कराते हुए बोले, 'भट जम नियम।' विवेकी पुरुष के सम्राट के लिए अपने जीवन में स्वाभाविक संयम-नियम की धारणा ये उनकी सुरक्षा है।

सांति सुमति सुचि सुंदर रानी।

तो, यहां तीन रानियों का उल्लेख है। कोई-कोई महापुरुष दो कहते हैं। कोई-कोई महापुरुष एक रानी है, दो उनके विशेषण है ऐसा बताते हैं। छूट है। लेकिन ऐसा संदर्भ हम ले सकते हैं कि एक समय था जब राजा कई रानियों से ब्याह करता था। और अयोध्या के राजा महाराज दशरथजी भी तो कई रानियों के पति रहे। लेकिन क्यों भगवान राम पूजे जाते हैं गांव-गांव? इतनी बड़ी लंबी परंपरा में भगवान राम ने मानवलीला करते हुए दिखाया कि मैं एक पत्नीव्रत रहूंगा। ये क्रांतिकारी कदम था।

तो, हमारे अध्यात्मजगत में यदि विवेक हमारा सम्राट है, अलोल चित्त हमारी राजधानी है, वैराग्यवृत्ति हमारा सचिव है, संयम-नियम हमारे जीवन का सुभट्ट है तो रानी कौन? तीन। शांति, जहां विवेक हो वहां शांति होनी चाहिए। सुमति, विवेकी के पास सद्बुद्धि होनी चाहिए। सुचि, पवित्रता होनी चाहिए। ये तीन अवस्था। यद्यपि तीन का उल्लेख है, लेकिन एक संत मुझे बता रहे थे कि यहां दो हो सकते हैं। दो रानी-शांति, सुमति। सुचि उसका विशेषण। पवित्र शांति और पवित्र सद्बुद्धि दो रानी है।

पवित्र शांति का मतलब क्या? बात भी तो ठीक लगती है। कई शांति शांति होते हुए पवित्र नहीं होती। हर सन्नाटा अच्छा नहीं होता। पवित्र शांति। अब, सुबुद्धि। सुमति हो और साथ-साथ पवित्रता भी हो। कभी-कभी सद्बुद्धि होती है, लेकिन पवित्रता नहीं होती। कभी-कभी हम अपनी सद्बुद्धि से किसीको कहते हैं, 'ये करोगे तो ऐसा होगा।' ये अच्छी बात है, सद्बुद्धि का निर्णय है। लेकिन ये सुमति अपवित्र कब हो जाती है? अब कोई हमें कहे कि वहां मत जाना। तो, अच्छी सलाह है। लेकिन फिर भी हम गए। तो, जो सुमतिवाला हमें सलाह देता था उसका अहंकार खंडित होता है। फिर वो क्या सोचता है? 'मेरी बात सुनी नहीं! कुछ बुरा परिणाम आएगा तब खबर होगी!' तब अपवित्र सुमति हो गई। सावधान रहो।

कोई-कोई संत कहते हैं कि शांति ही विवेक की धर्मपत्नी है। सुमति और सुचि उनके आभूषण है, ऐसा मैने सुना है। पूरा घर जलता हो और उसी समय आप शांत बैठे रहो तो सुमति का कुंडल आपने नहीं पहना। और जब हवाईजहाज का समय है सात बजे का और आप घरमें शांति रखकर बैठे हैं! ये शांति महंगी पड़ेगी! शांति के साथ सुमति हो। और दूसरा अलंकार है सुचिता। एक व्यक्ति की शांति ठीक है, लेकिन वेद का ऋषि कहता है, अंतरिक्ष में भी शांति हो। ये सुचि शांति हो। समग्र अस्तित्व में शांति हो। अकेला आदमी शांत होगा और पूरा परिसर अशांत होगा तो उनकी शांति खंडित हो सकती है। आज इतना ही।

मैं प्रार्थना करता हूं, कहीं से भी बंधना मत। सभी से सत्य लेना, बंधना मत। अध्यात्म तो स्वातंत्र्य और मुक्ति का बहुत बड़ा उत्सव है। किसी की स्वाधीनता को छिनना हिंसा है, अपराध है। आपके बच्चों की स्वाधीनता बरकरार रहे। हा, मार्गदर्शन करो। तुम्हारे बच्चे को ये भी दबाव मत डालो कि इसको गुरु बना। गुरु चुनने का उसको अधिकार दो। मेरा एक वक्तव्य है कि भोजन करने में यदि स्वतंत्रता है, तो भजन करने में पाबंदी क्यों? आदमी की स्वतंत्रता कोई पीठ छीने ना। स्वातंत्र्य अस्तित्व का वरदान है।

मानस-राजधानी
॥ ५ ॥

एक श्रोता ने पूछा है कि कल 'भट जम नियम सैल रजधानी', चित्रकूट की चर्चा हुई। 'सांति सुमति सुचि सुंदर रानी।' 'सकल अंग संपन्न सुराऊ।' 'राम चरन आश्रित चित चाऊ।' बड़ा प्यारा दर्शन। जिसकी कुछ चर्चा हम कर रहे हैं। आज जो पूछा गया है वो ये है कि, 'व्रज की राजधानी क्या है?' मैं क्यों उत्तर दूं? मेरे पूज्यपाद कलिपावनावतार पूज्यपाद गोस्वामी 'कृष्ण गीतावली' में जवाब देते हैं 'गोकुल व्रजधानी।' 'कृष्ण गीतावली' में व्रज की राजधानी का नाम गोकुल लिखा है। व्रज मानी प्रेम। कुछ बातें बिलकुल अभिन्न पर्याय होती है। उसको शब्द और रूप बिलग दे सकते हैं आप, लेकिन उसकी आत्मा को बिलग नहीं कर सकते। जैसे कि सत्य और स्वभाव दो शब्द है, लेकिन मेरी समझ में सत्य और स्वभाव तत्त्वत: एक है। प्रेम और परमात्मा दो शब्द है, लेकिन प्रेम और परमात्मा तत्त्वत: एक है। बाप, कृष्ण और करुणा एक है, ये दो नहीं है।

तो, व्रज प्रेम है, प्रेम व्रज है। 'जयति तेऽधिकं जन्मना व्रज:।' तो, व्रज की राजधानी तो गोस्वामीजी 'कृष्ण गीतावली' में

भावजगत की राजधानी हृदय है और उसका राजा है प्रेम

कह देते हैं 'गोकुल व्रजधानी।' प्रेम और व्रज एक है। मेरा तो ये प्रेमयज्ञ है। आज मुझे एक भाई ने पूछा है कि आप अष्टांगयोग में से कुछ करते हैं? यद्यपि अष्टांगयोग एक अद्भुत विज्ञान है आंतर्जगत का। जैसे कि आईन्स्टाईन बहिर्जगत का विज्ञानी है, वैसे भगवान पतंजली आंतर्जगत का वैज्ञानिक है, ऐसा ओशो का निवेदन है। लेकिन मुझे व्यक्तिगतरूप में आप पूछ रहे हैं। योग को बड़ा आदर देता हूं, लेकिन इन संतों की उपस्थिति में कहना हो तो मैं कहूं कि प्रेम ही मेरा यम है, प्रेम ही मेरा नियम है।

तो बाप! 'प्रेमयज्ञ' मैं कहता हूं कथा को; सत्य और करुणा के बीच मैं प्रेम को रख रहा हूं। मेरे लिए प्रेम ही यम है, प्रेम ही नियम है। प्रेम में दबाव से संयम नहीं आता, स्वभाव से संयम आता है। सही में प्रेमी को कभी मर्यादा दिखाई नहीं पड़ती। और जिसे दिखाई जाए वो प्रेमी नहीं। व्यासपीठ से मैं मोरारिबापू बोल रहा हूं। ये मेरा मंतव्य है, आप कुबूल करे, न करे। दुनिया छोड़नी पड़े तब कहते हैं यम आता है, वो यम-नियम दोनों प्रेम ही है। कहते हैं कि साधु-संतों के पास यम के दूत नहीं आते। आने दो ना भाई! यमुनाजी का भाई है, अनादर क्यों करते हो? यम यमुना का भाई है। संबंध की ईज्ज़त करो। दोनों सूर्य संतान है। हमारे देश में 'महाभारत' के आगे से संबंध का बहुत सन्मान किया गया है।

आज बहुत अच्छे प्रश्न मेरे पास आए। एक प्रश्न ये भी है कि 'द्रौपदी कितनी है?' देखो, सबकी अपनी-अपनी द्रौपदी होती है और होनी चाहिए। किसी के घर में चूल्हे का अग्नि, किसी के घर में यज्ञ का अग्नि। द्रौपदी याज्ञसेनी है। ये उजाला सबका अपना-अपना होता है। मुझे पूछो तो, मेरे लिए ऐसी बहिर्अग्नि है जो अन्न को पकाती है और ऐसी भीतरी अग्नि है जो अन्न को पचाती है। जब द्रौपदी को हम याद करते हैं तब हमारा मन पकता है, क्योंकि अन्न से मन बनता है। और चंचल मन पच भी जाता है। हमारी पूरी परंपरा में अग्नि से मातृशरीर का बहुत रिश्ता रहा। 'मानस'की जानकी भी देखिए, दो बार स्वयं अग्नि मांग रही है। तीन बार अग्नि की चर्चा 'मानस' के धरातल पर आई। 'अरण्यकांड' में ललित नरलीला का जब श्रीगणेश होता है तब भगवान राम कहते हैं 'तुम्ह पावक महुं करहु निवासा।' और वो ही जानकी अशोकवाटिका में जब बहुत राम के विरह में पीड़ित है, तब जानकी त्रिजटा से कहती है, 'हे त्रिजटा! कहीं से अग्नि ला दो, मैं मेरे देह को अग्नि में समर्पित कर दूं।' और वो ही जानकी लंकाविजय के बाद जब कहा गया कि अग्नि से फिर गुज़रे तब लक्ष्मणजी को निवेदन करती है कि, 'लक्ष्मण! पावक प्रकट करो और मुझे बिठाओ।' बड़ा रहस्यपूर्ण शास्त्र है 'रामचरित मानस'। लेकिन वो अगम सुगम होता है गुरुकृपा से।

तो, मेरे भाई-बहन! रिश्तों की हमने इज्ज़त की है। ये सूर्य का संतान यम, यमुना। यम भी प्रेम है; दुनिया के कुछ नियम निभाने पड़ते हैं, नियम भी प्रेम है। आसन भी प्रेम है। और प्रेम में कैसे भी बैठो वो ही आसन बन जाता है। तो, यह कोशिश करे यदि तुम्हें प्रेममार्ग में रुचि हो तो। बहुत मारग है यहां। हम बिलकुल ही स्वतंत्र है। मैं प्राणायम न करूं तो इसका मतलब यह नहीं कि प्राणायम का निषेध है, आप जरूर करिएगा। मेरे से बंध मत जाना। और आज मैंने सुबह एक वाक्य पढ़ा, 'कुछ करके गुज़रने की मौसम नहीं, मन चाहिए।' और यदि आप प्रेममय जीना सीख जाए तो आज के युग में मौसम भी है और मन भी है। प्रेमी को तो हर मौसम अपनेआप में ही होती है। आंख में आंसू आए तो वर्षा, निर्मल मन हो जाए तो शरद, अपने प्रिय व्यक्ति की याद में अथवा तो उसके नैकट्य जाते ही कपकपी शुरू हो जाए तो शर्दी।

लब थरथरा रहे है, मगर बात ना हुई।
कल रात जिंदगी से मुलाकात हो गई।

प्रेमीओं के जीवन में प्रेम ही एक मौसम होती है। वसंतऋतु है। रोज फाग खेलता है प्रेम अपने आत्मा से, भीतरी अवस्था से। प्रेम ग्रीष्म है। भगवान प्रेमसंदेश भेजते हैं जानकीजी को तो कहते हैं, ये ताप है।

तो, प्रेम ही यम है, प्रेम ही नियम है, प्रेम ही आसन है। किसी की याद में श्वास हिलोरे लेने लगे वो प्राणायम है। और आदमी जब प्रेम की क्षणों में डूबता है तब क्या एक अक्रिय ध्यान पैदा नहीं होता? एक भीगा ध्यान। एक रससिक्त ध्यान। भीगी बस्तु नरम होती है। इसलिए प्रेमीओं की बातें जहां-जहां आती है वहां भीगापन बहुत होता है। 'भीगा' मानी प्रेमपूर्ण। संतों का तो दिन रात में ऊगता है और पूरी रात भीगी होती है। तो, ये प्रेम है धारणा, प्रेम है ध्यान और प्रेम ही है भक्तों की समाधि।

तो, मेरे भाई-बहन, आपने पूछा है कि व्रज की राजधानी क्या? तुलसी कहते हैं, 'गोकुल व्रज धानी।' और व्रज प्रेमपर्याय है। तो, हम कल चित्रकूट की चर्चा कर रहे थे। और यह भी बहुत महत्त्व का तुलसीदर्शन है कि चित्त का निरोध न करे, चित्त को प्रबोध करे, चित्त को रामचरणआश्रित कर दे। जो सरल पड़े वो करो। पतंजलि कहे, चित्त का निरोध ही योग है। तुलसी कहते हैं, 'मोरे मन प्रबोध जेहि होई।' लेकिन 'राम चरन आश्रित चित चाऊ।' जिसका चित्त रामचरणाश्रित हो गया; मुझे लगता है कि हम जैसों के लिए तो यही अनुकूल पड़ेगा। कहां निरोध करने जाए? कहां समझाने जाए? ये घडी हाथ में पहनना एक बात है, जेब में रखना एक बात है, लेकिन हम बहुत निर्भार हो जाते हैं, यदि हम दूसरों को दे दे। मुझे तो यही सरल पड़ता है।

तो, व्रज की राजधानी है गोकुल। जैसे चित्रकूट एक रजधानी है, उसका एक सुंदर रूपक बनाकर गोस्वामीजी ने आध्यात्मिक दर्शन पेश किया। तो, ये राजधानीवाला प्रसंग है इसलिए किसी न किसी संदर्भ में हम राजधानी की यात्रा कर रहे हैं।

मैंने पहले दिन आपको सुनाया था कि भावजगत की राजधानी दिल है। अब, राजधानी हृदय है तो राजा कौन? रानी कौन? सैनिक कौन? सचिव कौन? हम उसके बारे में सोचे।

दिल को हमने मंदिर कहा है। दिल है प्रेमजगत की राजधानी। और राजा कौन है? स्वयं प्रेम। प्रेम ही दिल का शासक है। रामकथा प्रेमशास्त्र है। इसीलिए मैं उसे प्रेमयज्ञ कहता हूं, ज्ञानयज्ञ नहीं। ज्ञान बहुत अगम है। और हम लोगों को पाले नहीं पड़ती ज्ञान की चर्चा। तुलसी कहते हैं -

सोह न राम पेम बिनु ग्यानू।।

करनधार बिनु जिमि जल जानू।।

तुलसी ने ग्यारह चीज ऐसी बताई जिसका परिणाम मात्र प्रेम होना चाहिए। प्रेम न हो तो वो सब व्यर्थ है। 'सब कर फल रघुपतिपद प्रेमा।' गत कथाओं में मैंने उसका जिक्र किया है। तो, दिल राजधानी है। दिल है पाटनगर पूरी बोड़ी का। तो, उसका सम्राट है प्रेमदेवता। प्रेम का रंग कैसा, रूप कैसा? और प्रेम सम्राट है तो रानी होनी चाहिए। प्रेमरूपी सम्राट की रानी का नाम मेरी व्यासपीठ कहती है, मस्ती। और मस्ती रानी है, कोई भिखारण नहीं है। ये कीर्तन की मस्ती है। जहां प्रेम होगा वहां मस्ती होगी। एक उदासीन मस्ती। और ध्यान देना, सहज, स्वाभाविक, जन्मजात, मर्यादा से दीक्षित मस्ती। क्योंकि मस्ती का गलत अर्थ आप कर सकते हैं! और जिसने मस्ती के रूप में प्रेम का चयन किया हो उसका सुहाग सिंदुर कभी मिटता नहीं, क्योंकि प्रेम अमर है। मस्ती अखंड सुहागिनी है। राधा सदैव महारानी है, क्योंकि उसका पति कृष्ण का पर्याय प्रेम है। मस्ती है मेरी समझ में महारानी। मुझे लगता है कि जिसमें सही प्रेम होगा वो मुस्कुराता होगा, वो धीरे-धीरे चलेगा तो भी उसमें नर्तन होगा, वो गद्य बोलेगा तो भी उसमें से आपको पद्य की आवाज़ आएगी। उसकी सांस-सांस में संगीत होगा। खुमार साहब का कलाम है। खुमार साहब तो खुमार साहब थे! हमारे बहुत अज़ीज़ शायर -

न हारा है ईश्क और न दुनिया थकी है।

दिया जल रहा है और हवा चल रही है।

प्रेम करनेवाले थके नहीं और निंदा करनेवाली दुनिया भी थकी नहीं!

तो, मस्ती महारानी है। राधेजु महारानी है। इसलिए हम राधे महारानी कहते हैं। ये प्रेमदेवता की महारानी है। कृष्णचरित्र में प्रेयसी राधा, पत्नी रुकमिणी, सखी द्रौपदी - ये तीन नदियां एक प्रयाग में समाई थी। तीनों अपने गंतव्य का ध्यान रखती है। जनम-जनम की जन्मजात, सहज, स्वाभाविक, आत्मा की कुबूल की हुई मर्यादा से युक्त मस्ती प्रेम की धर्मपत्नी है। ये ताल में नाचेगी। मातृशरीर में ये मर्यादा बहुधा स्वाभाविक है।

तो, प्रेम है देवता, महाराजाधिराज है, सार्वभौम चक्रवर्ती है। महारानी है मस्ती, स्वाभाविक मर्यादा। ग्राम्यनारियों ने हमारी माँ जानकी को पूछा कि, हे स्वामिनी, अविनय क्षमा करना। ये दो राजकुमार आपको क्या लगते हैं? ये तुम्हारे कौन है?' अब जानकी ने कहा कि ये जो गौर है वो मेरे लघु देवर है। लेकिन फिर वो जन्मजात खानदानी शालीनता, मर्यादा।

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी।

पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।।

तुलसी की कविता देखिए! त्रिगुणातीत कविता। 'बहुरि बदन बिधु।' फिर जानकी ने क्या किया? अपने चंद्रमुख

को आंचल में ढांका। फिर तुलसी कहे, 'खंजन मंजु तिरीछे नयननि।' बहुत सुंदर, पवित्र, असंग आंखों को जरा तिरछी की। ये तुलसी भी कोई कम नहीं है! जब शृंगार उतरता है तब स्वयं डूब जाते हैं। तो, संकेत से कह दिया, 'निजपति।' तो, ये मर्यादा। जो आदि शक्ति, लेकिन एक मातृशरीर के नाते जानकीजी जन्मजात शालीनता और ये सहज मर्यादावाली। तीरछी आंख से संकेत करना मस्ती नहीं है तो क्या है? लेकिन मर्यादा का लोप नहीं हो रहा है। नमी आंख और झुकी आंख बहुत कुछ कह सकती है।

ज़माने के सवालों को मैं हंसकर टाल देता हूं फ़राज़,
लेकिन नमी आंखों कहती है मुझे तुम याद आते हो।

ये कितना छोटा-सा मंत्र है।

न कुछ मतलब अजानों से न कुछ पाबंदी नमाजों की।
महोब्बत करनेवाले का खुदा कुछ ओर होता है।

प्रेमनगरी के नागरिक का ईश्वर कुछ बिलग होता है।

मुझे याद आता है वो छोटा-सा प्रसंग। सायंकाल की पांचवीं नमाज़। पीर निझामुद्दीन और अमीर। बाबा बैठे थे अपने स्थान में। थोड़ा समय चुका जा रहा था। और बाबा अपनी मस्ती में बैठे थे, डूबे थे। लेकिन बाबा दुनिया के लिए बंदगी कर रहे थे। तो, अमीर को लगा कि बाबा को मैं जरा कह दूं कि, 'बाबा, नमाज़ का समय हो चुका है।' लेकिन अमीर जब जाकर देखता है तो पीर रो रहे हैं! अब उसको डिस्टर्ब करना भी अच्छा नहीं लगा। और शायद 'अमीर तुने मुझे बताया नहीं?' ऐसा कहे तो? लम्हें बीते जा रहे थे। बिलकुल नमाज़ का समय हो गया। और इस्लाम धर्म का नियम है कि पहले वज़ू किया जाता है। थोड़ा पानी लेकर इबादत करनेवाले इस्लाम धर्म में वज़ू करते हैं। और यहां समय बिलकुल हो चुका है। तो कहा कि, 'बाबा।' तो, बाबा ने कहा, 'चलो यहां ही नमाज़ अदा कर लें।' बोले, 'वज़ू?' कहे, 'वज़ू हो गया।'

आंख से आंसू गिर जाए किसी की याद में इससे बड़ा वज़ू क्या हो सकता है? और ये व्रजवासी ही ऐसे याद करते थे उद्धव से ऐसा थोड़ा है? कृष्ण स्वयं कहते हैं उद्धव से, 'उधो! व्रज बिसरत नाहि।' कभी भीतरी आत्मा बोले कि, 'मुझे वो याद आते हैं।' अरे, स्थूल संबंध से भी लीजिए। ऐसे तो ही सीढ़ी चढ़ी जाती है। रामकथा है प्रेमकथा।

तो, सहज मर्यादायुक्त मस्ती प्रेम की सुहागन नारी है। हृदय है राजधानी। सैनिक कौन है? प्रेम का रक्षक कौन? किससे प्रेम टिका हुआ है? मुझे कहने दो, प्रेमसम्राट का सैनिक है भरोसा। भरतजी बोलते हैं, 'मोहे रघुवीर भरोस।' 'मेरी भक्ति का पतन कभी नहीं होगा, क्योंकि मुझे राम का भरोसा है।' मैं मेरे श्रोता भाई-बहनों को कहूं, कभी प्रभु जिंदगी में डिप्रेश न करे। लेकिन जीवन है। ज़हर भी पीना पड़ेगा। कभी इन्सान के जीवन में होता है कि आदमी चारों ओर से हार जाता है। कहीं कोई चारा न दिखे, तब क्या करोगे? है 'मानस' में कोई व्यवस्था? है। 'मानस' आशीर्वाद देता है। क्या करोगे ऐसे समय में? बहुत बड़ी फोर्म्यूला संभल जाने की। धैर्य आ जायेगा। भरतजी अकेले बैठे है। बड़ा अद्‌भुत है भरतजी का चरित्र! मेरे जुवान भाई-बहन, सबको मैं आह्वान करूं। भरत ने हृदय देखा तो हार गया। 'मेरी माँने लूट लिया।' और समय से पहले सूर्यास्त हो जाए तो किसको पीड़ा नहीं होती? लेकिन एक पंक्ति की अर्धाली में एक हार, दिशाशून्यता।

'हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा।'

लेकिन ढ़ाढ़श -

'एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा।'

एक रीत है इससे बाहर निकलने की और वो भली रीत है। डिप्रेश मत होना, निकल जाओगे। इसलिए सत्संग करो। 'एक प्रकार से मेरा भला होगा।' अब, देखिए साहब, औषधि -

गुर गोसांईं साहिब सिय रामू।
लागत मोहि नीक परिनामू।

'मेरा गुरु और मेरा इष्ट अनुकूल है। मेरा गुरु और इष्ट मेरे पास है।' हरिनाम का आश्रय हो और हरिनाम में निष्ठा रखने को कहनेवाले गुरु की अनुभूति हो तो याद रखना, आखिर में भला परिणाम होगा। और देखिए, भरतजी का ये चिंतन किसकी मौजुदगी में हो रहा है? आबोहवा भी काम करती है। 'साधु सभा गुरु प्रभु निकट।' साधु की मंडली में भरतजी बैठे हैं। और मेरा गुरु बैठा है। ये स्थान भी बड़ा पवित्र है, चित्रकूट।

मैं विश्व को प्रार्थना करता हूं, भगवान आपको कभी उदास न रखे। लेकिन यदि हुआ तो भरत के इस प्रसंग का स्मरण करना। भरोसा देखिए भरतजी का! तो, भरोसा है रक्षक। भरोसा है प्रेम की रजधानी का रक्षक। बिना भरोसे हम लुट जाएंगे। बुद्धिवाद कहता है विश्वास अंध होता है। जिसको बोलना है, बोलने दो। शंकर विश्वास है, तो अंध नहीं हो सकता। दो आंख नहीं, तुलसी कहते हैं पंद्रह आंख है उनको। वो अंध कैसे हो सकता है?

तो, प्रेम सम्राट है। सहज मर्यादावाली मस्ती रानी है। राजधानी है हृदय। सुरक्षा है भरोसा। सचिव कौन है? ये मेरा अंगत मत है, मैं उसको लाद नहीं रहा हूं। कौन है सचिव? ये आज की कथा का अंतिम सूत्र। मुझे जो कुछ समझ में और अनुभव में आया वो प्रेमरूपी सम्राट का सचिव है त्याग। त्याग सलाह देगा कि प्रेम करना है तो त्यागो। आधी प्रामाणिकता प्रेम में नहीं चलेगी। कोई कहे कि प्रेम अच्छा है और कहे कि हम से नहीं होगा तो आधी प्रामाणिकता हो गई!

बाप! ये भीगी कथा। प्रेम भीगा कर देता है। प्रेमसम्राट की राजधानी का नाम है हृदय और हृदय से जब सब प्रकार से हार जाओ तब गुरु और साहिब को मत भूलना। भरोसा और त्याग सदैव सलाह देता रहेगा। सत्य का फल निर्भयता है, प्रेम का परिणाम त्याग है और करुणा का फल अहिंसा है।

भावजगत की राजधानी है हृदय और उसका राजा है प्रेम। प्रेम ही दिल का शासक है। प्रेमरूपी सम्राट की रानी का नाम है मस्ती। और ध्यान देना, सहज, स्वाभाविक, मर्यादा से दीक्षित मस्ती। मस्ती महारानी है। प्रेम का रक्षक-सैनिक कौन? प्रेमसम्राट का सैनिक है भरोसा। और सचिव कौन है? ये मेरा अंगत मत है, प्रेमरूपी सम्राट का सचिव है त्याग।

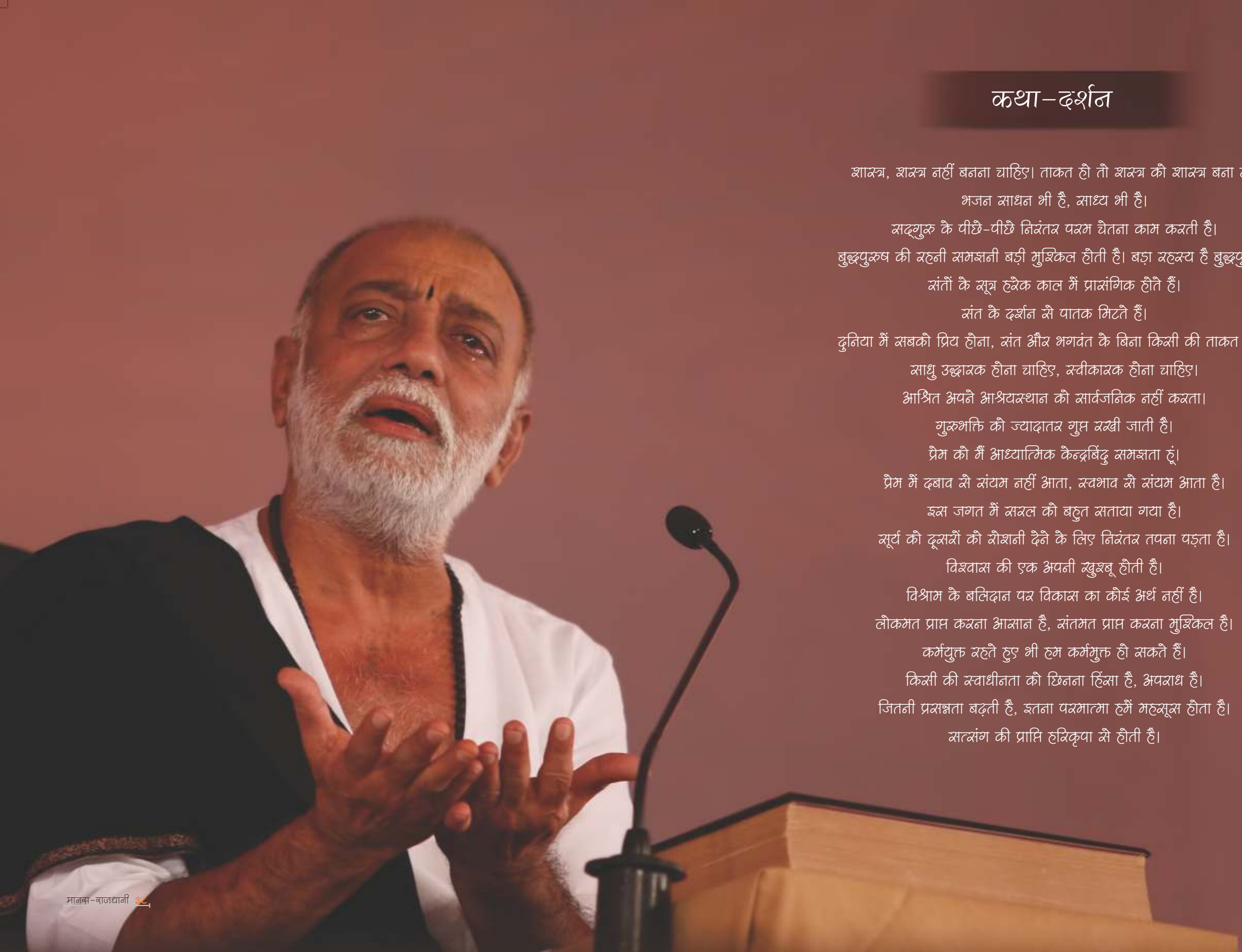

कथा-दर्शन

शास्त्र, शस्त्र नहीं बनना चाहिए। ताकत हो तो शस्त्र को शास्त्र बना दो।

भजन साधन भी है, साध्य भी है।

सद्गुरु के पीछे-पीछे निरंतर परम चेतना काम करती है।

बुद्धपुरुष की रहनी समझनी बड़ी मुश्किल होती है। बड़ा रहस्य है बुद्धपुरुष।

संतों के सूत्र हरेक काल में प्रासंगिक होते हैं।

संत के दर्शन से पातक मिटते हैं।

दुनिया में सबको प्रिय होना, संत और भगवंत के बिना किसी की ताकत नहीं।

साधु उद्धारक होना चाहिए, स्वीकारक होना चाहिए।

आश्रित अपने आश्रयस्थान को सार्वजनिक नहीं करता।

गुरुभक्ति को ज्यादातर गुप्त रखी जाती है।

प्रेम को मैं आध्यात्मिक केन्द्रबिंदु समझता हूं।

प्रेम में दबाव से संयम नहीं आता, स्वभाव से संयम आता है।

इस जगत में सरल को बहुत सताया गया है।

सूर्य को दूसरों को रोशनी देने के लिए निरंतर तपना पड़ता है।

विश्वास की एक अपनी खुश्बू होती है।

विश्राम के बलिदान पर विकास का कोई अर्थ नहीं है।

लोकमत प्राप्त करना आसान है, संतमत प्राप्त करना मुश्किल है।

कर्मयुक्त रहते हुए भी हम कर्ममुक्त हो सकते हैं।

किसी की स्वाधीनता को छिनना हिंसा है, अपराध है।

जितनी प्रसन्नता बढ़ती है, इतना परमात्मा हमें महसूस होता है।

सत्संग की प्राप्ति हरिकृपा से होती है।

मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करूं कि, कल सायंकाल को भी आप (हुज्जतुल इस्लाम आगा महदी, इरान कल्चर हाउस, दिल्ही) रूबरू आए कि कथा में आना चाहते हैं और फिर मिलना भी है। मैंने कहा, यहां दिल ही दिल है, कोई दीवार तो है नहीं। आप आये, बड़ी खुशी हुई। और आपने पहले भी मुझे निमंत्रित किया है इरान आने को और आज दुबारा आपने दावत दी। लेकिन मैं आपको एक बात बता दूं कि आपने कहा कि आप इरान आए और वहीं से इराक भी जाए। इराक में करबला की कथा तो ओलरेडी पड़ी है। और उस समय मैं इमाम हुसैन की पावन दरगाह को भी मथ्था टेकुंगा। लेकिन मैं आपसे ये बताना चाहता हूं कि मैं तो अभी जब जाऊं तब, यदि मौका मिला तो मैं जरूर जाऊंगा, लेकिन इससे पहले चित्रकूटधाम तलगाजरड़ा के हनुमानजी के दर्शन के लिए आप आ गये! ये बड़ी महिमावंत बात है। और आज आप व्यासपीठ पर आये और इतना आदर प्रस्तुत किया ये हकीकत में आपका बडप्पन है, आपकी उदारता है।

ये ओर बात हैकि वो खामोश खड़े रहते हैं।

लेकिन जो बड़े होते है वो बड़े ही रहते हैं।

रामकथा से जीवन की शिक्षा, आध्यात्मिक दीक्षा और प्रेम की भिक्षा प्राप्त होती है

आपकी ये उदारता है। मेरी भी इच्छा है कि एक-दो दिन इरान आऊं। सनातन धर्मावलंबी वैदिक परंपरा के हम अनुगमन करनेवाले हैं, इसलिए इमाम हुसैन साहब की दरगाह पर कौन-सी चादर चढ़ाऊं? मैं तो चौपाईयां की चारद चढ़ाऊं? और मेरी एकता की बात केवल जाहेर मंच तक सीमित नहीं है। मैं बहुत दिल से 'रामचरित मानस' की साक्षी में बोल रहा हूं, आप खुश होंगे कि मैं निरंतर अग्नि के पास बैठता हूं। लेकिन उस अग्नि में हिन्दु होने के नाते मैं केवल गुगल नहीं डालता, मैं लोबान भी डालता हूं। वो मेरा एकान्तिक एकता का शिवसंकल्प है। ये मेरा स्वभाव है। मैं जरूर आऊंगा। मैं आपको शे'र सुनाऊं -

यूं तो लोग खुदा को भी बुरा कहते हैं।
आपके कहने से कोई न बुरा होता है।
संग कितने भी उछाले मेरी जानिब दुनिया,
मेरे होठों पे सदा हर्फ़ दुआ होता है।

- डो. देवबंदी साहब

मोहब्बत का पैगाम। यही काम करना है छोटी-सी ज़िंदगी में। इस एकता का पैगाम जाहेर मंच से जितना अद्‌भुत से जा रहा है वैसे हमारे अंगत मंचों से भी इसी तरह पैगाम जाये। कहां भेद है? करबला में जो मरे उनको मारनेवाला कोई हिन्दु नहीं था और कुरुक्षेत्र में जो मरे उनको मारनेवाला कोई मुसलमान नहीं था। अपने-अपने ही मरे! तो, आपका बहुत-बहुत शुक्रिया। यही तो सेतु है। लड़ाये वो धर्म नहीं, जोड़े वो धर्म। हमारे महामुनि विनोबाजी ने ठीक कहा था, दो धर्म के बीच कभी लड़ाई नहीं होती, जब भी लड़ाई होती है, दो अधर्मों के बीच में ही होती है। इमाम हर जगह होगा, जहां इमान होगा। यदि इमान नहीं, तो कभी इमाम नहीं। दुनिया में जहां भी कुछ हसीन बातें होगी, हर जगह हुसैन है।

तो आईए, अब हम कथा के मूल विचार को फिर मिलकर सोचें। 'रामचरित मानस' में जो राजधर्म की चर्चा है, मैं इन बिंदुओं को छूना चाहूंगा। बहुत विस्तृतरूपेण उसकी चर्चा गोस्वामीजी ने की है। एक पंक्ति से तो आप बहुत परिचित है -

राजधरम सरबसु एतनोई।

जिमि मन माहँ मनोरथ गोई।।

मैं राजनीति की चर्चा नहीं करना चाहता, राजधर्म की चर्चा करना चाहता हूं। जैसे आंख का एक धर्म है, हमारे कानों का एक धर्म है, हमारे हाथ का एक धर्म है। और ईस्लाम धर्म है, सनातन धर्म है, ईसाई है, बौद्ध है, जैन है। जल का धर्म है, अग्नि का धर्म है, पृथ्वी का धर्म है। धर्म मानी स्वभाव। ऐसा एक राजधर्म भी है। राजधर्म के इस संकेत को पकड़कर गुरुकृपा से मैं कुछ कहना चाहूं तो ये कहना चाहूंगा कि राजधर्म में तीन का पालन करना होता है। और ये तीनों का पालन करने के लिए तीन व्यक्ति की सलाह हृदय से कबूल करनी होती है। तीन का ठीक से परिपालन करे वो राजधर्म। आज भी इतना ही ये प्रासंगिक सूत्र है। समग्र विश्व के लिए, यदि ग्रंथियां त्याग कर कबूल करे तो।

राजधर्म में तीन का प्रामाणिक परिपालन होना चाहिए। एक, पृथ्वी का पालन करे वो राजधर्म। समग्र पृथ्वी का परिपालन करना पड़ता है राजधर्म में। समग्र पृथ्वी का पालन केवल साधु-संतों का ही दायित्व नहीं है, यद्यपि वो उठाते हैं जरूर। जब समग्र पृथ्वी को परेशानी हुई तब कोई संत पीछे न रहा, गूफा में से निकल-निकलकर हमारे ऋषिमुनि पृथ्वी के संग चले थे। इस पृथ्वी का शोषण कैसे अटके? एक बार वो प्रतापभानु, जो राजधनी था, उसने जो जीया है, विश्व में कोई राजा ऐसा करीब-करीब नहीं जीता। मैं पूर्वपाठ देखता हूं 'बालकांड' का तो महसूस करता हूं कि प्रतापभानु के राज्य में कहीं भी दुःख नहीं थे। लेकिन यही प्रतापभानु कालांतर में रावण बनता है और सभी सूत्र विपरीत हो जाते हैं! बिलकुल ऊलटा शासन हो जाता है। उजाला अंधेरा बना गया! बहुत सावधान रहना। कब आदमी की ऊंचाई छूट जाए, ठिकाना नहीं! दो ही बस्तु बचा सकती है मेरी समझ में - हरिनाम ओर गुरु का कवच। गोस्वामीजी कहते हैं -

कवच अभेद बिप्र गुर पूजा।

एहि सम बिजय उपाय न दूजा।।

तो बाप, शुक्लपक्ष को कृष्णपक्ष में परिवर्तन होने में देर नहीं लगती! तो, मेरे श्रोता भाई-बहन, हम और आप सब सावधान रहे कि आदमी ऊंचाई से कब गिर जाए, ठिकाना नहीं! इसलिए हरिनाम और गुरुकृपा का कवच, यही बचाए रखता है।

तो बाप, पहला सूत्र, पृथ्वी का प्रामाणिक परिपालन होना चाहिए। दूसरा सूत्र, प्रजा का प्रामाणिकता से परिपालन होना चाहिए। और तीसरा सूत्र, राजधानी का प्रामाणिकता से परिपालन होना चाहिए।

तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी।

पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।।

फिर 'राजधानी' शब्द आया। क्या राजधर्म है 'मानस' का? क्यों मैं इस बिंदु को स्पर्श करता हूं? यद्यपि थोड़ा स्थूल है, लेकिन हम थोड़े कोई परमहंस बन गये हैं? तीन का पालन और तीन की सीख, तुलसीदासजी जोड़ रहे हैं। पृथ्वी का पालन करना, प्रजा का पालन करना और राजधानी का पालन करना और तीन क्रम में, 'पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।' और किनके द्वारा कराना ये पालन? 'तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी।' तीन की सिख लेना। हमारी पारिवारिक भी एक छोटी-सी पृथ्वी होती है, प्रजा होती है, राजधानी होती है। इनमें भी तीन की सीख मानकर इन तीनों का परिपालन करना ये तुलसी का पावन संदेश है।

बाप! मुनि को पुछकर, मुनि से सीख लेकर, उनके चिंतन को, आदेश को, विचार को ग्रहण करके; माँ की सीख लेकर और साधुचरित सचिवों की सीख लेकर तुम पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन करना ऐसा संदेश 'मानस' ने दिया है।

मुनि की सीख से पृथ्वी का पालन करना। माँ की सलाह लेकर प्रजा का पालन करना। और सचिव की सीख मानकर राजधानी का पालन करना। समग्र पृथ्वी का परिपालन करना सीखना चाहिए ऋषिमुनिओं से, किसी महामुनिओं से, किसी बुद्धपुरुषों से। सम्राट लोग पृथ्वी का ठीक से परिपालन नहीं करते। पृथ्वी और पूरे अस्तित्व का दुनियाभर में शोषण हो रहा है! वृक्ष काटे जा रहे हैं! नदियों के प्रवाह रोके जा रहे हैं! इतने बड़े कारखानें वायु को प्रदूषित करते हैं! पर्यावरण का खतरा आज वैश्विक चिंता है। वृक्ष काटे न जाए, जल प्रदूषित न हो। कौन पालेगा इस भूमि के तत्त्वों को? इस अस्तित्व के विभागों को कौन पालता है? किसी मुनियों से पूछो, जिन्होंने किसी जनम में इन्हीं नदियों के तट पर तपस्या की हो, ऐसे महापुरुषों से पूछो। केवल कमिशन बनाने से काम नहीं चलता! और ध्यान देना, संतों की बानी हर काल में सार्थक होती है। ये तुलसी का शास्त्र इतनी साल पहले आया, इसका मतलब ये पुराना नहीं है। भव्य पुराना हो सकता है, दिव्य कभी पुराना नहीं हो सकता। दिव्य की व्याख्या गोस्वामीजी स्वयं करते हैं। 'जे नितनूतन', जो रोज़ नया हो उसको दिव्य कहते हैं।

कथा दिव्य है, क्योंकि कथा रोज़ नयी है। रामकथा रेली नहीं है, प्रेम का रेला है। मेरा लक्ष्य तो भारत की युवानी है, मैं उनको संबोधित करना चाहता हूं। वो सुने कथा। और आज युवान लोग कथा में आते हैं। इक्कीसवीं सदी का सगुन है कि युवानी कथा सुन रही है। कथा बहुत कुछ देती है। सत्संग या तो कथा न होती तो हम क्या होते? मैं तो कहता हूं, ये कलियुग नहीं है, कथायुग है। मैं 'दिव्य' की कुछ चर्चा कर रहा था कि भव्य भेंकार हो सकता है, लेकिन दिव्य नितनूतन है। दिव्य वो है जो रोज़ नया लगे। दिव्य वो है जो निर्मल रहे,

'अमल सुहाए।' बहुत कुछ बदला, कथाओं का प्रवाह नहीं बदला। भगवद्कथा नई है। भगवद्कथा के आयोजन में जो निमित्त बनते हैं उसके लिए तुलसीदासजी ने कहा है -

धन्य धन्य गिरि राजकुमारी।

तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी।।

शंकर ने कहा, 'हे पार्वती! तू बहुत धन्य है। तेरे समान कोई उपकारी नहीं है।' ऐसे कथा में जो निमित्त बने उसका सन्मान किया गया है। बहुत अद्भुत माध्यम है ये। रामकथा से जीवन की शिक्षा, आध्यात्मिक दीक्षा और प्रेम की भिक्षा प्राप्त होती है। जीवन की शिक्षा मिलती है, वर्तमान समस्याओं का जवाब रामकथा प्राचीन होते हुए देती है। आध्यात्मिक दीक्षा देती है, दिशा देती है। और भगवद्कथा हमें प्रेम की भिक्षा प्रदान करती है। ये तीनों वस्तु भगवद्कथा में है।

बाप, संतों के सूत्र हरेक काल में प्रासंगिक होते हैं। मुनियों को पूछकर पृथ्वी का प्रामाणिकता से परिपालन किया जाए। पृथ्वी का शोषण न हो, पृथ्वी का पोषण हो। और वो मुनिलोग कर सकते हैं। कितने संत जूटे हैं जमुना की परिशुद्धि के लिए! और ये क्यों गंदे नालें डाले जाते हैं? उसका कोई दूसरा निकाल नहीं हो सकता? और मैं तो उद्योगपतियों को कहूं कि तुम भी हिन्दुस्तान की औलाद हो, तुम बदलो ना तुम्हारी गंदी नाली, माँ की उदर में क्यों गंदी नाली डाले जा रहे हो? ऐसी सीख साधु-संतों से लेना।

मुझे फिर निझामुद्दीन ओलिया याद आ रहा है। अमीर खुशरो एक समय बहुत संपदावान आदमी था, फिर तो उसने अपने पीर के चरण में सब रख दिया। एक दिन खबर नहीं, अमीर के मन में क्या उठा, बाबा के पास बैठा है, पैर दबा रहा है। अचानक पैर दबाते-दबाते पूछता है, 'बाबा, मन में एक बात आ रही है तो पूछ लूं? बाबा, मेरी इच्छा है किसी धर्मस्थान बनाना। तो, आप मार्गदर्शन दे।' तो, निझामुद्दीन ने कहा, 'बेटा! तुझे धर्मस्थान ही बनाना है तो एक काम कर। आश्रम में पांच पैड़ बो दे। हो गया तेरा धर्मस्थान।' ये संतलोग कितने अस्तित्व को प्रेम करनेवाले निकले!

अब दूसरा सूत्र, 'पालेहुँ पुहुमि प्रजा रजधानी।' प्रजा का पालन करना। प्रजा का पालन करने की सीख माँ को पूछकर लेनी। प्रजा, राजा की संतान है। और संतान की रखवाली जितनी माँ कर सकती है, उतना बाप नहीं कर सकता। तो, जिसके पास प्यार है वो प्रजा का ज्यादा पालन कर सकता है। राजा लोग पूरी जनता को इस रूप में देखे और माँ की तरह इस प्रजा का पोषण करे।

फिर तीसरा सूत्र, रजधानी। रजधानी का प्रामाणिक पालन सचिव को पूछकर करना। 'नाम धरमरुचि हरिपदप्रीति।' सचिव हरिपदप्रीतिवाला होना चाहिए, सचिव धर्मरुचि होना चाहिए। और मैं बार-बार दोहराए जा रहा हूं, मेरी समझ में धर्म मानी सत्य, प्रेम और करुणा। इसमें जिसकी रुचि हो ऐसा सचिव राजधानी का परिपालन कर सकता है। तो, 'मानस' की पंक्ति में जहां-जहां 'रजधानी' शब्द आया है उसके मुताबिक कुछ दर्शन जो तुलसी ने प्रस्तुत किए उसकी मैं आपसे चर्चा कर रहा हूं।

आज मुझे कथा को रामजनम तक ले जाना है। लेकिन उससे पहले, कल मुझे पूछा गया कि, 'बापू, आप सब राजधानियों की बात कर रहे हैं, सद्गुरु की राजधानी कौन?' बड़ा प्यारा प्रश्न। हमारा देश संतों का देश है। अन्य मुल्कों में चेतनाएं नहीं है ऐसा नहीं, लेकिन

यहां ज्यादा फसल पकी है। तो, जब पूछा है कि सद्गुरु की राजधानी कौन? तो मैं भारत कहूं तो संकीर्ण हो जाऊंगा। सद्गुरु को मैं संकीर्ण नहीं कर सकता। फिर वसीम बरेलवी साहब का वो शे'र याद आता है -

वो जहां भी रहेगा रोशनी लुटाएगा,

चरागों को कोई अपना मकां नहीं होता।

साधु को कोई एक जगह पर ममता नहीं होती। तो, सद्गुरु की राजधानी कहां? मैं 'मानस' की चौपाई से कहना चाहूंगा -

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना।

आन जीव पांवर का जाना।।

सद्गुरु की राजधानी त्रिभुवन है। तीनों भुवन उनकी राजधानी है। उनको हम संकीर्ण नहीं कर सकते। अब, तीनों भुवन का मतलब हुआ, आकाश, पृथ्वी, पाताल। तीनों भुवन। जब हम कह रहे हैं कि त्रिभुवन बुद्धपुरुष की राजधानी है, तो किस रूप में? आसमां में राजधानी कैसे? मेरी समझ में शब्द आकाश का गुण है। सद्गुरु जो-जो बोल बोले वो आकाशवाणी है। आकाशरूपी एक भुवन में सद्गुरु बोल से व्याप्त होता है। आकाश असंग है, उनकी बोली असंग होती है, राग-द्वेष मुक्त होती है।

पृथ्वी पर रहता है, हमारी तरह रहता है। त्रिभुवन की व्याख्या करनी है तो बोल आकाश में, वचन आकाश में और वर्तन धरती पर। उच्चारण आसमां का, उच्च स्तर का। आचरण हमारे जैसा। इसलिए बुद्धपुरुष समझे नहीं गए! मैंने आपको दो-चार बार सुनाया कि बुद्धपुरुष की रहनी समझनी बड़ी मुश्किल होती है। जल्दी में निर्णय मत दे देना। बड़ा रहस्य है बुद्धपुरुष। उच्चारण

आसमां का और आचरण पृथ्वी का। और पाताल का मतलब क्या? पाताल का मतलब है गहराई। उनकी अनुभूति की गहराई पाताल की तरह गहरी होती है। और उनका चिंतन, उसकी सोच केवल ऊंचे लोग के लिए नहीं होती, निम्न लोगों के लिए भी उनके हृदय में सद्भावना होती है। पाताल मानी जीवन की सोच की सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् से भरी हुई गहराई। और निम्न से निम्न व्यक्ति तक पहुंचने का प्रामाणिक इरादा। ये तीनों भुवन को छूता है।

जो थोड़ा समय बचा है उसमें रामजनम का गायन कर लूं। तुलसीजी हम सबको लिए चलते हैं तीरथराज प्रयाग। तीरथराज प्रयाग की संगमीभूमि पर महापर्व कुंभ का समापन हुआ और याज्ञवल्क्यमुनि भरद्वाजजी से बिदा लेते है। भरद्वाजजी जिज्ञासा करते हैं, 'भगवन्! आप परमविवेकी है। आप मुझे बताओ, रामतत्त्व क्या है?' यद्यपि भरद्वाजजी तो जानते हैं कि रामतत्त्व क्या है? लेकिन हमारे जैसे मूढों को समझाने के लिए उसने गूढ़ प्रश्न पूछा। और तीरथराज प्रयाग में कर्म के घाट पर कथा का आरंभ होता है। रामचरित्र के पहले शिवचरित्र की बड़ी प्यारी कथा सुनाई। ये तुलसी का समन्वय है, आध्यात्मिक संगम है।

पूरा शिवचरित्र सुना दिया। शिव और सती कुंभज के वहां गए। वापस लौटते राम का दर्शन हुआ। सती को संदेह हुआ, परीक्षा करने गए, विफल हुई, शिवजी ने त्याग किया आदि। दक्षयज्ञ में सती जल गई। पार्वती के रूप में पर्वतराज हिमालय के घर जन्मी। शिव को पाने के लिए कठिन तपस्या करती है और वरदान प्राप्त करती है कि शिव मिलेंगे। दरम्यान भगवान शिव ध्यानस्थ थे। प्रभु प्रकट हुए, शिव से कहा, 'पार्वती का पाणिग्रहण करे।' भगवान शिव परमात्मा की आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं। नंदि पर सवार होकर बाबा की बारात निकली। हिमाचल प्रदेश पहुंचते हैं। महारानी मैना परिछन के लिए आती है, शिव का रूप देखकर बेहोश होती है। नारद ने सब पर्दा खोला। गुरु पर्दा खोलता है तब पता लगता है कि घर में शक्ति है और आंगन में शिव है, लेकिन बिना सद्गुरु हमें कहां पता लगता है? फिर वेद और लोकरीति से विवाह सम्पन्न हुआ। और हिमालय ने अपनी बेटी को बिदा दी। पार्वती को लेकर शिव कैलास पहुंचे। कार्तिकेय का जनम हुआ और कार्तिकेय ने तारकासुर नामक राक्षस को निर्वाण दिया।

एक बार शिव कैलास के वेदविदित वटवृक्ष के नीचे बैठे है। पार्वती ने पूश्न पूछा, 'भगवन्! गत जन्म में राम की लीला को देखकर संदेह हुआ कि ये ब्रह्म है? आप मुझे रामकथा सुनाओ।' और भगवान शंकर फिर कैलास के शिखर पर ज्ञानपीठ पर महादेव पार्वती को रामकथा सुनाते हैं। रावण, कुंभकर्ण, विभीषण, तीनों भाईयों ने बड़ी तपस्या की। दुर्लभ वरदान प्राप्त किए। और मिली तपस्या के फलस्वरूप ये आदमी शक्ति का दुरुपयोग करने लगा। और आखिर में पृथ्वी गाय का रूप लेकर ऋषिमुनियों के पास आई। देवताओं के पास पूरा समूह आगे बढ़ा। सब समूह मिलकर परमात्मा को पुकारते हैं। सभी ने प्रभु को पुकारा। आकाशवाणी हुई, 'धरती! धैर्य धारण करो। मैं अंश सहित प्रकट होउंगा।' और अब गोस्वामीजी हमें लिए चलते है श्री अयोध्या, जहां परमात्मा का प्राकट्य होनेवाला है।

अयोध्या का सार्वभौम राज्य। वर्तमान सम्राट दशरथजी। धर्मधुरंधर है, गुणनिधि है, ज्ञानी है, भक्त भी है। 'मानस'कार उनके दाम्पत्य का वर्णन करते हुए परमात्मा हमारे आंगन में प्रकटे ऐसे दाम्पत्य की फोर्म्यूला देते हैं। तुलसीदासजी तीन सूत्र प्रदान करते हैं। कौशल्यादि रानियां राजा को आदर देती है। और राजा

तीनों रानियों को प्यार देता है। और दोनों साथ मिलकर घर में प्रभु की भक्ति करते हैं। मेरे भाई-बहन, हमारे दाम्पत्य भी यदि इन तीन सूत्रों से युक्त हो तो हमारे घर भी, हमारा आंगन भी अयोध्या का आंगन बन सकता है। हमारे घर भी राम जैसी चेतना आ सकती है। बस, तीन ही बात। पुरुष स्त्री को प्यार दे ये पुरुष का कर्तव्य है। और स्त्री अपने पति को आदर दे, क्योंकि पुरुष जरा घमंडी होता है। और दोनों हरि भजे। राम जैसा बेटा मिलेगा। लेकिन इतना नहीं हो रहा!

बाप! कौशल्यादि रानी और दशरथ का दिव्य दाम्पत्य, लेकिन पुत्रप्राप्ति नहीं है। वशिष्ठजी के पास जाकर अपनी समस्या व्यक्त की। भगवान वशिष्ठ ने कहा, 'राजन्! आपके घर एक नहीं, चार पुत्रों की प्राप्ति होगी, लेकिन एक यज्ञ करना होगा।' शृंगीऋषि को बुलाया। पुत्रकामेष्टियज्ञ करवाया। यज्ञनारायण हाथ में प्रसाद का चरु लेकर यज्ञकुंड से प्रकट होते हैं। वशिष्ठजी को देते हैं। गुरुदेव ने प्रसाद राजा को दिया। राजा, रानियों को बांटते है। प्रसाद बांटा जाए, बेचा न जाए। राजा ने तीन भाग करके रानियों को दिया। फिर चार पुत्र की प्राप्ति और वो पूरी दुनिया को दे दिया। पूरी बांटने की प्रक्रिया है।

तीनों रानियां सगर्भा हुई। गोस्वामीजी कहते हैं, हरि कौशल्या के गर्भ में आए। काल बीता। भगवान को प्रकट होने का मंगल अवसर निकट आया और पंचाग अनुकूल हो गया। चराचर हर्ष व्याप्त है। त्रेतायुग, चैतमास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, मध्याह्न, अभिजित, विश्रामकाल। मंद सुगंध शीतल वायु बहने लगी। देवताओं से पूरा नभमंडल संकुल हुआ। तीनों लोक में स्तुतियां होने लगी। एकदम प्रकाश होने लगा माँ कौशल्या के भवन में। प्रकाश में से कुछ आकारित होने लगा। माँ कौशल्या के भवन परम तत्त्व परमात्मा सुंदरस्वरूप धारण करके प्रकट होते हैं -

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।

हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

संतों से मैंने सुना है, फिर माँ मूंह घूमा लेती है। भगवान पूछते हैं तो बोले, 'आप वादा तोड़ रहे है। आप नररूप में नहीं आए, नारायण बनकर आए है। हमें मानवरूप में परमात्मा चाहिए।' भारत की माँ ईश्वर को मनुष्य कैसे हुआ जाए उसकी शिक्षा प्रदान कर रही है। और बिलकुल नवजात शिशु के रूप में भगवान कौशल्या की गोद में बच्चे की तरह रोने लगे। अब राम का बालरूप में प्राकट्य हुआ। बालक का रुदन सुनकर ओर रानियां सभ्रम दौड़ आई! महाराज दशरथ को बधाई दी गई। पूरी अयोध्या में बधाईयां शुरू हुई।

मैं बहुत दिल से 'रामचरित मानस' की साक्षी में बोल रहा हूं, मैं निरंतर अग्नि के पास बैठता हूं। लेकिन उस अग्नि में हिन्दु होने के नाते मैं केवल गुगल नहीं डालता, मैं लोबान भी डालता हूं। वो मेरा एकान्तिक एकता का शिवसंकल्प है। यही काम करना है छोटी-सी ज़िंदगी में। इस एकता का पैगाम जाहिर मंच से जितना जा रहा है, वैसे हमारे अंगत मंचों से भी इसी तरह पैगाम जाये। कहां भेद है? करबला में जो मरे उनको मारनेवाला कोई हिन्दु नहीं था और कुरुक्षेत्र में जो मरे उनको मारनेवाला कोई मुसलमान नहीं था। अपने-अपने ही मरे! लड़ाये वो धर्म नहीं, जोड़े वो धर्म।

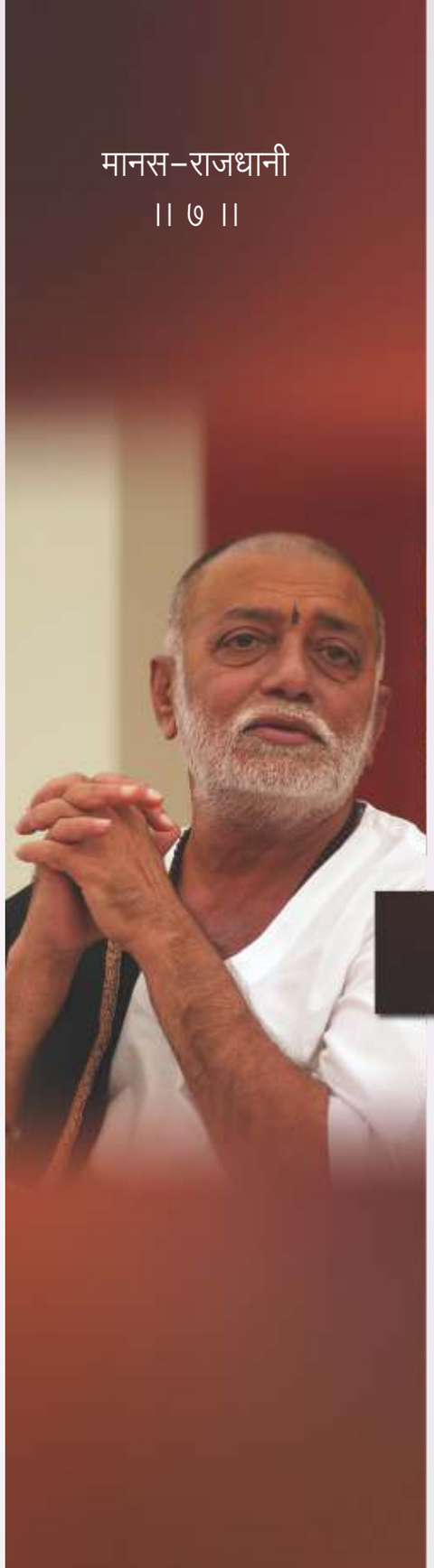

मानस-राजधानी
॥ ७ ॥

'मानस-राजधानी', जिसकी हम और आप मिलकर साथ में कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा कर रहे हैं। आज बहुत-से प्रश्न आए, लेकिन पूरे मैं पढ़ नहीं पाया। एक-दो बातें रख ली है। व्यासपीठ राजनीति की चर्चा नहीं कर रही है, राजधर्म की चर्चा कर रही है। नीति बनाई जाती है, धर्म बनाया नहीं जाता। यद्यपि संप्रदाय बनाया जाता है, मूलपुरुष न चाहे तो अनुयायी बना देते हैं! नीति सदैव निर्माण की जाती है, नीति के परिपालन का आग्रह भी किया जाता है। नीति के अनुकूल न चलनेवालों को दंड का विधान भी है। धर्म निर्माण नहीं किया जाता, धर्म परमात्मा के वक्षस्थल से प्रकट होता है। धर्म है परमात्मा के वक्षस्थल से प्रकट हुआ स्वयंभू एक आदितत्त्व।

एक प्रश्न ये भी आया है कि, 'आप जब व्यासपीठ से स्वभाव को धर्म कह रहे हैं, धर्म स्वभाव है?' धर्म शरीर का स्वभाव नहीं है। शरीर स्थूल है। जरूर, हम एक शब्दप्रयोग करते हैं, 'शरीरधर्म'। मेरी समझ में, धर्म शरीर में रही चेतना का स्वभाव है। धर्म मानी जड़ में निवासित चैतन्य का स्वाभाविक स्वभाव। ये स्थूल

धर्म प्रकट होता है, पैदा नहीं किया जाता

नहीं है। धर्म के तत्त्व को मनीषीओं ने बहुत गूढ़ समझा है। 'निहितम् गुह्याम्' कहा है। बहुत भीतरी गुहा में ये रहता है। तो, नीति निर्धारित की जाती है इसलिए समयानुकूल देशकालानुसार नीति में परिवर्तन भी किया जाता है। नीति शाश्वत नहीं हो सकती, धर्म शाश्वत है। धर्म प्रकट होता है, बनाया नहीं जाता। धर्म परमात्मा के वक्ष से निकलता है, जैसे माँ के वक्ष से दूध निकलता है, प्यार निकलता है।

तो, धर्म प्रकट होता है, पैदा नहीं किया जाता। इसीलिए उसका जो केन्द्र है वो वक्ष है। एक आदमी किसी को गले से लगाए,

इसका मतलब है कि धर्म को बीच में रखकर हम आपको गले लगाते हैं। हम वात्सल्य, प्यार को लिए हुए हैं। हमारे प्रतिदिन की जो रहन-सहन है उसमें से धर्म सीखो। धर्म केवल शास्त्र से ही नहीं मिलता, धर्म व्यक्ति की प्रत्येक रहन-सहन में भी दिखना चाहिए। हमारा धर्म केवल तिलकों में सीमित रह गया! यद्यपि तिलक महिमावंत है। धर्म हमारे साथ-साथ चले। कहा गया है कि धर्म हमारा एक ही ऐसा साथी है जो अंत तक साथ चलता है। आज प्रकट होती नई-नई चेतनाओं ने धर्म की व्याख्या बदली नहीं है, हमें उनकी जड़ तक ले जाने का प्रामाणिक प्रयास किया है। आपने देखा होगा कि देहातों में आदमी वृक्ष की शाखा पर लटकते हैं, फिर गिरते हैं। गिरते हैं तब जड़ की और जाते हैं। क्योंकि फिर चढ़ना वहीं से होता है। हम शाखाओं पर लटक चूके हैं, भगवान करे गिर जाए और जड़ की ओर मूड़े। जीवन की ऊर्जा भी ऐसे ऊर्ध्वगमन करती है।

ये 'बालकांड' से उत्तरकांड की यात्रा क्या है? 'रामचरित मानस' एक घटी घटना है, ऐतिहासिक क्या, सनातन घटना है, फिर भी एक अंतर्यात्रा तो है। 'बालकांड' केवल भगवान की बाललीला को निदर्शित करने के लिए ही नाम नहीं दिया, ये स्थूलनाम है। ये प्रत्येक साधक की अंतर्यात्रा का संकेत है। ऊर्जा क्रमश: बढ़े।

आज एक भाई ने मुझे पूछा है तो उसे क्या जवाब दूं? उसने पूछा है कि, 'आप ध्यान को प्रधानता देते हैं कि प्रेम को?' कूटप्रश्न है! मैं ध्यान का अनादर कैसे कर सकता हूं? मेरे लिए ध्यान प्रेम है, धारणा प्रेम है, समाधि प्रेम है। ध्यान और प्रेम को बिलग क्यों करे? ध्यान प्रेम से करो और प्रेम ध्यान से करो, बात खतम! मूल को पकड़ो, बेकार वस्तु गिर जाएगी। लोग कहते हैं, आंखें बंद करके ध्यान करो; कृष्णमूर्ति कहते हैं, आंख खुली हो तो भी ध्यान हो सकता है। ध्यान साधन नहीं है। ध्यान, ध्येय सब एक है। सुबह-सुबह आप याद करो कि कोई एक फूल है, शबनम घीरी हुई है, उस पर आप भाव में डूब जाओ तो क्या ये ध्यान नहीं है? सहज हो। सहज जीओ। क्यों दीवारें पैदा करते हो?

वो एक झख्मी परिन्दा है, वार मत करना।
पनाह मांग रहा है, शिकार मत करना।

इरादा सामनेवाला बदल भी सकता है,
मुकाबला ही सही लेकिन पहले वार मत करना।

- अंदाज दहेलवी

'भागवत' में एक कथा है। कालयवन भगवान कृष्ण के पीछे पड़ा तो हम सब जानते हैं कि भगवान कृष्ण रणछोड करके भागे। आपको ऐसा नहीं लगता कि कभी-कभी रण छोड़ना चाहिए? कौन-सा Ego लिए बैठे हो? क्या अहंकार है? यार, वो तो तुम्हें मारना चाहते हैं! तुम ऐसे ही अहंकार में मर जाओगे इससे बेटर है कि भागो, ऊर्जा पैदा करके फिर जमाने के सामने आओ। कृष्ण को कोई बदनामी नहीं लगी। और कालयवन, महाकाल को क्या भगा सकता है? लेकिन कृष्ण भागे। भागना कायरता नहीं, भागना अपने को बचाने के लिए नहीं, लेकिन जो द्वेष करना चाहता है उसको तुम मौका क्यों देते हो? केवल झूठे अहंकार के लिए? भागने का मतलब यहां कायरता नहीं है। कायरता सतजोजन दूर रहती है ठाकुर से। ठाकुर समझकर भागे है। और भागे क्या, उसको अपने पीछे भगाने के लिए, भागने के लिए मजबूर किया कि आदमी का उद्धार तभी होगा कि मेरे पीछे भागे।

हम धन के पीछे भागे हैं, पद के पीछे भागे हैं! हम ठाकुर के पीछे भागे। सोचो। लेकिन क्या ये कृष्ण की कालयवन पर करुणा नहीं थी? मथुरा में इसका उद्धार नहीं होगा, इसका उद्धार गिरनार में होगा। और साधक दौड़-दौड़ जब थक जाए तब करुणा महसूस करता है। गिरनार की गूहा में मुचुकुंद सोया था। और भगवान कृष्ण अपना पीतांबर सोए हुए मुचुकुंद पर ओढ़ा देते हैं। और निकल गए। और कालयवन वहां तक आया तो पाता है कि, 'यहां आकर सो गया?' मुचुकुंद ने साधना करके परमात्मा से केवल निद्रा मांगी थी। तो, उसने सोचा कि कृष्ण सोया है। और कालयवन ने उसको ललकारा! वो तो बड़ी निद्रा में सोया है। फिर उसने ठेस मारी। और मुचुकुंद को कहा गया था कि तुम्हें जो जगाएगा बलात् वो मर जाएगा। और कालयवन ने उसको जगाया। और जैसे मुचुकुंद जागा तो वो कालयवन मर गया! मैंने तो यही बोध लिया इस कथा में से कि आदमी की जागृति काल को मार देती है। कभी काल भी कृपा कर देता है कि जगाता है। कथा सुनते-सुनते थोड़ी ठेस लग जाए, एक चौपाई छू जाए, एक सूत्र कानों में रस घोल दे।

तो, कृष्णमूर्ति ने कहा है कि आंखें खुली हो तो भी ध्यान हो सकता है। सहज हो, अक्रिय हो। सुबह-सुबह फूल देखो। जैसे बादशाह राम किसी को तोड़ने नहीं देते थे, वो कहानी कहा करते थे। फिर ओशो ने भी 'मैंने सुना है' ऐसा कहकर कहा। यद्यपि ओशो बहुत पढ़ते थे। उसकी लायब्रेरी मैंने देखी है। कहते हैं, दो पन्ना पढ़कर पूरी किताब जान लेते थे! विशेष चेतना का जागरण का फल होता है। उसमें कोई तर्क-वितर्क करने की जरूरत नहीं। लेकिन कभी नहीं कहा कि 'मैंने पढ़ा।' 'मैंने सुना', कहते थे। किताबों का अवलोकन करते थे। 'मानस' को पढ़ो मत, अवलोकन करो। स्वाध्याय तो स्व का हो। ग्रंथ बोलते हैं, स्वयं मुखरित होते हैं, अधिकारी साधक के सामने।

तो, स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे, एक घास का फूल था। वो एक दीवार की आड़ में खिला है। कोई हवा उसको झुका नहीं सकती, क्योंकि इंट उसकी सुरक्षा है। कोई तुफ़ानी वर्षा उसको परेशान नहीं कर सकती, क्योंकि इंट उसकी सुरक्षा है। कोई प्रखर ताप उसको मुर्झा नहीं सकता, क्योंकि छांव है। और वही बगियां में बादशाह राम के गुलाब के पौधे थे। वर्षा होती है, पंखुरियां गिर जाती है, प्रखर ताप में गुलाब मुर्झा जाता है। हवा का झोंका गुलाब के इस कोमल जड़ को हिला देता था। और बादशाह राम दोनों दृश्य देखते रहते थे। उसने सुना घास के फूल को बोलते। एक दिन घास का फूल परमात्मा से प्रार्थना करता है, 'मुझे गुलाब बनाओ ना, मैं एक बार महकुं।' भगवान ने कहा, 'जहां हो, सहज हो, ठीक हो।' लेकिन जिद्द पकड़ी। और भगवान ने कृपा की और घास के फूल को गुलाब का फूल बना दिया। और सुबह से ही इतनी हवा चली कि पूरी जड़ उखड़ ने की कगार पर! थोड़ी देर हुई तो प्रखर सूर्य ताप आया। और बाकी रहा तो मुशलाधार वर्षा हुई, हर पंखुरियां गिर गई! तब उनकी बिरादरी के अन्य घास के फूल थे उसने कहा, 'नासमझ! हमने कहा था ना कि जो हो वो ठीक है।' अब, बात तो सही थी कि जो हम है वो ही ठीक है, दूसरा क्यों बने! लेकिन फूल ने कहा, 'निरंतर किसी इंटों की आड़ में जीवन जीने से तो बेहतर है मैदान में जीया जाए।' मरे-मरे सो साल जीने से बहेतर है एक दिन जीकर मर जाए।

तो, मैं आपसे बात करता हूं। नीति का निर्माण होता है, धर्म प्रकट होता है। धर्म का प्राकट्य स्थान है ठाकुर का वक्षस्थल। इसलिए शाश्वत है।

तो बाप, तुलसी ने राजनीति की बात न की। की तो भी इसके पीछे इरादा है राजधर्म का। धर्म है इन्सान में रही चेतना का स्वभाव। 'भगवद्गीता' भी स्वभाव को धर्म कहती है। बोलने में हम बोलते हैं, 'शरीर का धर्म' लेकिन ये नाशवंत है। शरीर का धर्म शरीर नाश होते ही खतम! जली हुई अग्नि का धर्म है उष्णता देना, लेकिन वो बुज जाने से उष्णता खतम!

बरफ का धर्म है ठंडक देना, लेकिन बरफ पिघल गया तो उसके साथ उसका धर्म भी खतम! शाश्वत धर्म की जो बात है वो आदमी के चैतन्य का स्वभाव है।

तुलसीजी राजधरम की चर्चा करते हैं। राजधानी में हम बैठे हैं, तो कल जो राजधरम की चर्चा हुई थी, कुछ विशेषरूप में राजधरम को हम समझें।

राजधरम सरबसु एतनोई।

जिमि मन माहँ मनोरथ गोई।।

'भरत, सर्वस्व राजधर्म इतने में समा जाता है' ऐसा ठाकुर का वचन 'अयोध्याकांड' का। तो, थोड़ा ओर दर्शन भी करे तुलसी के राजधर्म का।

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।

करब साधुमत लोकमत नृतनय निगम निचोरि।।

ये दूसरा दर्शन राजधर्म का है। बड़ा विशिष्ट सूत्रात्मक कथन। शब्द निकले हैं भगवान वशिष्ठ के मुख से, चित्रकूट की सभा में। 'प्रभु, आप भरत का विनय सुनिए। और सुनकर निर्णय मत कर लेना तुरंत कि मेरा संत बोला तो बात खतम! भरत का विचार सुनिए और उस पर बहुत विचार किया जाए। ये छोटा है इसलिए अनसूना न करे।' मैं आप से कहूं, कभी छोटा आदमी बोले तो उन्हें भी आदर के साथ सुना करो। कभी उनके मुख से भी पते की बात निकल सकती है; कभी बच्चे के मुख से भी मंत्र निकल सकता है। ट्रकों के पीछे लिखा होता है, 'पप्पा, जल्दी घर आना।' मंत्र है कि समयसर घर लौट जाओ। बुद्धपुरुष भी क्या कहते हैं? हम को बाप कहकर कहते हैं, जल्दी घर आना, मूल स्थान पर जल्दी लौट आना।

एक पल है हंसना, एक पल है रोना,
कैसा है जीवन का खेला?
एक पल है मिलना, एक पल बिछड़ना,
दुनिया है दो दिन का मेला।
ये घड़ी न जाए बीत, तुझे मेरे गीत बुलाते है।
तुने भली रे निभाई प्रीत, तुझे मेरे गीत बुलाते है।

वृंदावन से गया फिर आया नहीं, तुने भली निभाई प्रीत! आपको लगता होगा कि बापू अभी-अभी फिलम के गीत ज्यादा गा रहे हैं! लेकिन ये गीत मैं मेरी कथा के शुरूआत से गा रहा हूं। ये गोपीगीत है। यशोदाजी कृष्ण का नाम भूल गई, नंद को याद है। कृष्ण के विरह में माँ नाम भूल गई! क्या प्यार रहा होगा! और यहां व्यक्ति नहीं बुला रहा है, व्यक्ति का गीत बुला रहा है। कोई देह नहीं बुला रहा है, देही बुला रहा है।

तो, कोई छोटा आदमी बोले तो अनसुना मत करना। मेरे भाई-बहन, वशिष्ठजी कहते हैं, 'राघव, भरत का अनादर मत करना। उसको पहले सुनो। और निर्णय करने से पहले बहुत विचार किया जाए उस पर। और विचार करने के बाद भी आप निर्णय मत लेना। निर्णय लेने से पहले, राजधर्म कहता है, चारों का मत एकत्रित करो।' यद्यपि यहां 'चार मत' की बहुत व्याख्याएं हो सकती है। लेकिन ये चारों का मत एक होना जरूरी है। चारों मत परस्पर विरोधी है, लेकिन चारों का मत एक होना बहुत जरूरी है। क्योंकि संतमत और लोकमत कभी एक नहीं हो पाए। संतमत और लोकमत एक होते तो लोग संतों की इतनी निंदा क्यों करते? जानकी विश्व की सद्गुरु है, लेकिन एक ओर

जानकी और एक ओर पूरी अयोध्या का लोकमत। सीता को छोड़ा नहीं!

इस जगत में सरल को बहुत सताया गया है। विनम्र को बहुत गालियां पड़ी है। और जिसस क्राईस्ट ने ठीक कहा कि, जो जीवन में विनम्र हो वो ही पवित्रता तक पहूंचेगा और जो पवित्रता तक पहूंचेगा वो ही मेरे पिता के राज्य में प्रवेश पाएगा। शब्द बहुत छोटा-सा है, 'विनम्रता'। आपने कभी देखा है, आप जब विनम्र होओगे तब लोभी नहीं होंगे; तब क्रोध नहीं कर पाओगे। कितने दूषण छूटते हैं केवल एक छोटी-सी विनम्रता से? जीवन जीने की सभी कलाएं विनम्रता से मिलती है। हम विनम्र होंगे तब आक्रमक नहीं होंगे। विनम्रता से ऐसे क्रमशः पवित्रता आती है। सहज विनम्रता। आपको पानी की तृषा लगी है, आप नदी में खड़े हैं। आपके पैरों से पानी गुज़र रहा है, लेकिन आप झुकने के लिए राजी नहीं तो? अक्कड मार देती है।

और फिर राजमत और वेदमत। कभी बनी है राजमत और वेदमत की? लेकिन एक अर्थ में मेल बिठाना पड़ेगा। 'चारों लोगों के मत को एकत्रित करके फिर रघुनाथ, निर्णय करना।' ये राजधरम है एक अर्थ में। और लोकमत प्राप्त करना आसान है, संतमत प्राप्त करना मुश्किल है। लोकमत तो कैसे भी ले सकते हैं, लेकिन संत खरीदे नहीं जाते। वशिष्ठजी कहते हैं, 'भरत, ये जो राज्य से सब लोग आए हैं इनका भी मत लो और संतों का भी मत लो।' निर्णय से पहले लोकमत भी जरूरी है ओर संतमत भी जरूरी है। 'रामायण' का लोकमत अद्‌भुत है। लेकिन केवल लोकमत पर 'रामायण' में शासन पद्धति नहीं है। बहुमती नहीं, सर्वमती। ये विचार ब्रह्मलीन रामकिंकरजी महाराज के हैं। सर्वमती से काम हो। साधुमत भी लो, लोकमत भी लो। राजमत क्या है उसको भी आदर दो और वेद क्या है, हमारे ऋषिमुनि ने जो मूल विचार किया उसको भी पूछो। चार मत को इकठ्ठा करो।

तो बाप! 'मानस-राजधानी' को केन्द्र में रखते हुए कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा एक संवाद के रूप में हम सब मिलकर कर रहे हैं। कल के कुछ सूत्र अधूरे पड़े हैं, वो पूरे कर दूं।

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना।

आन जीव पांवर का जाना।।

जो पुछा गया था कि बुद्धपुरुष की राजधानी कौन? तो, मैंने तुलसी की चौपाई से कहा था कि बुद्धपुरुषकी राजधानी त्रिभुवन है। उसके आंदोलन हर जगह जाते हैं। गुरु के आंदोलन सभी को प्रभावित करते हैं। चंद्रमणि का लक्षण है। चंद्र उदित हो तो चंद्रमणि रस छोड़ने लगता है वैसे सद्‌गुरु त्रिभुवन को स्मृति में लाए तो त्रिभुवन आंदोलित होने लगता है।

तो, फिर सद्‌गुरु तो सम्राट है, त्रिभुवन उनकी राजधानी है। फिर उनकी महाराणी, उनका अनुगमन करनेवाला तत्त्व कौन? अनुगमन करती है परम चेतना। सद्‌गुरु के पीछे-पीछे निरंतर परम चेतना काम करती है। परम चैतन्य। परम चेतना ही उनकी छाया है। हमारे यहां हमने चित्रों में देखा कि बुद्धपुरुष के अगल-बगल में एक प्रकाशपुंज रहता है। परम चैतन्य उनका अनुगमन करता है। वैसे बुद्धपुरुषों को कोई सुरक्षा की ज़रूरत नहीं, सुभट्ट की ज़रूरत नहीं, लेकिन ये साम्राज्य का रूपक जब बनाया है तब ये सब सूत्र हम थोड़ा समझ लें। सहमत होने की ज़रूरत नहीं, सोचे जरूर। कौन है उनके सैनिक? मुझे कहने दो, परम तत्त्व का अनुग्रह ही सुभट्ट है। और जिसकी सेवकाई स्वयं परमात्मा का अनुग्रह करता हो इस बुद्धपुरुषों के लिए क्या कहना? कहते हैं बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तो फूल बरसने लगे! बुद्धि तो कुबूल नहीं करेगी, ये अस्तित्व का अनुग्रह है कि सेवा में आना ही पड़ता है। और जो सेवा में रहता है उसको आप कह सकते हैं कि 'तू उसके घर जा।' वैसे बुद्धपुरुष परमात्मा के अनुग्रह को हुकम करता है कि मेरा एक आश्रित दूर रो रहा है, जा उनका काम कर आ। हमारा बुलाया अनुग्रह नहीं आता, गुरु का भेजा हुआ अनुग्रह हमारे घर आता है। बुद्धपुरुष परमात्मा के अनुग्रह को हमारी झोंपड़ी तक भेजता है। हमारी साधना का कोई फल नहीं है।

तो, त्रिभुवन राजधानी, परम चैतन्य छाया और बुद्धपुरुष का सचिव सत्य है। वो सत्य की बात ही कबूल करता है। आप कहेंगे कि हम तो इतने बुरे फिर भी हमारे गुरु बिचारे सब बात मान लेते हैं! नहीं, जरूर हम ऐसे हैं लेकिन इनमें से भी एक कोई उजाला वो पकड़ लेता है, साहब! आयुर्वेद में पूरा बोडी का चेकअप नहीं करवाया जाता था, केवल एक नब्ज पकड़कर निदान हो जाता था, वैसे इस दुनिया में सत्य के बिना कोई नहीं, गुरु छोटा-सा सत्य देख लेता है और बाकी के सभी असत्यों का इलाज करने लगता है। इसलिए सत्य ही उनका सचिव है। कोश होना चाहिए राजा के पास। कृपा ही उसका खजाना है। तुलसी कहते हैं -

सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।

सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को।।

ये करुणानिधान है, उनका कोश है करुणा; उनके खजाने से कभी करुणा कम न हुई। वो करुणाविग्रह होता है, 'कारुण्यरूपं करुणा करंतं श्रीरामचंद्रम् ...।'

मेरे भाई-बहन, ऐसे बुद्धपुरुष की राजधानी त्रिभुवन है, वो त्रिभुवन को प्रभावित करता है। बस आज इतना ही करूं? 'अब मैं बहुत नाच्यो गोपाल', लेकिन थका नहीं। ये तो विश्राम है। मथुरा में विश्रामघाट है ना, मेरा ये विश्रामघाट है। मैं परिकम्मा करता हूं, ये कोई खोखली धार्मिक प्रक्रिया नहीं है, ये मेरी व्यासपीठ को मैं पहले से हर एंगल से देख लेता हूं और मेरा दामन पसारता हूं कि देना ताकि मैं बांटूं। और फिर जाते समय तेरा तुझको अर्पण। मेरे लिए खबर नहीं, ये क्या नहीं है? मेरा एक निवेदन है कि व्यासपीठ मेरी चिता है। और जीव की चिता ठंडी की जाती है; मैं चाहता हूं कि मेरी ये चिता कभी ठंडी न की जाए। क्योंकि ये जीव की चिता नहीं है, ये शिव का स्मशान है, जहां अखंड अग्नि के लपटे निकलती है। ये मेरा मरघट भी है, पनघट भी है। ये विश्रामघाट है। यहां बैठता हूं तब थाक नहीं लगता। यहां परमविश्राम है। तुलसी कहते हैं -

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।

पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

आज एक भाई ने मुझे पूछा है, 'आप ध्यान को प्रधानता देते हैं कि प्रेम को?' मैं ध्यान का अनादर कैसे कर सकता हूं? मेरे लिए ध्यान प्रेम है, धारणा प्रेम है, समाधि प्रेम है। ध्यान और प्रेम को बिलग क्यों करे? ध्यान प्रेम से करो और प्रेम ध्यान से करो, बात खतम! मूल को पकड़ो, बेकार वस्तु गिर जाएगी। सुबह-सुबह कोई एक फूल है, शबनम घीरी हुई है, उस पर आप भाव में डूब जाओ तो क्या ये ध्यान नहीं है?

मानस-राजधानी
।। ८ ।।

किसी न किसी रूप में 'मानस-राजधानी' को केन्द्रतत्त्व बनाकर हम मिलकर उसकी कुछ चर्चा कर रहे हैं। आज भी इतने प्रश्न है कि किसको लूं, किसको छोडूं? 'राजधानी' प्यारा शब्द है। किसी भी मुल्क की राजधानी में 'धानी' शब्द जुड़े हुए कुछ शब्द है। उसका अनुभव करके इस्तमाल करना चाहिए। तभी राजधानी, राजधानी है। वर्ना तो वो एक नगर है, शहर है। लेकिन मेरी व्यासपीठ की दृष्टि से कुछ 'धानी' शब्द से जुड़े हुए शब्द 'राजधानी' में घटित हो तो ही राजधानी, राजधानी का गौरव प्राप्त कर सकती है। मैं आपसे ये वार्तालाप करना चाहता हूं कि क्या राजधानी के साथ मेरी व्यासपीठ जिन शब्दों को जोड़ रही है, कुछ विशेष अर्थ के लिए ये आवश्यक नहीं है? उस पर आप गौर करे। चाहे किसी भी मुल्क की राजधानी हो।

एक, 'सावधान।' 'रामचरित मानस' का ये प्यारा शब्द है। जिसमें वक्ता, श्रोता को सावधान करता है; अब ये न लगे कि वक्ता श्रोता को ही सावधान करे। मैं पुण्यश्लोक ब्रह्मलीन डोंगरेजीबापा को याद करूं। आप कथा में अक्सर

शास्त्र हमारे वश नहीं होते, शास्त्र के वश में हम होते हैं

बोलते थे, 'शुकदेवजी सावधान करते हैं।' 'मानस' में भी है कि श्रोताओं को सावधानी से कथा सुननी चाहिए। 'सावधान सुनु सुमति भवानी।' भगवान शंकर सावधान करते हैं। ये तो एक वक्ता को अधिकार है, कह सकता है। लेकिन 'मानस' अपनी जगह एक अनुठा ग्रंथ है। तो, 'रामचरित मानस' ने एक बड़ी प्यारी बात बताई कि वक्ता, श्रोता को सावधान करे। लेकिन वक्ता को कौन सावधान रखे? 'मानस' कहता है कि वक्ता स्वयं अपनेआप को सावधान करता है। श्रोता को वो ही सावधान कर सकता है जो खुद को पहले सावधान करता है। प्रमाण -

सावधान मन करि पुनि संकर।
लागे कहन कथा अति सुंदर।।

वक्ता को स्वयं अपनेआपको अनुशासित करना होता है। तो, बड़ा प्यारा शब्द है 'सावधान'। इससे एक शब्द बना है, 'सावधानी'। मैं इसीलिए राजधानी के साथ इन मिलते-जुलते शब्दों को जोड़ता हूं कि प्रत्येक राजधानी का कर्तव्य है, वो खुद सावधानी रखे। वो बेहोश न रहे; प्रलोभन के कारण बेहोशी न आए। एक-दूसरों की टांग खिंचने से बेहोश न हो जाए! निम्न कक्षा के निवेदन से बेहोश न हो जाए! मैं 'सावधानी' शब्द का प्रयोग कर रहा हूं तब प्रत्येक राजधानियों को सावधानी बरतनी अत्यंत जरूरी है। तो, एक तो है सावधानी।

दूसरा एक शब्द बना है, गुडधानी। राजधानियों का कर्तव्य है कि सबको पर्याप्तरूप में आदर के साथ रोटी मिले। केवल राजधानी का पेट भर जाए इतना नहीं, आखिरी व्यक्ति तक गुडधानी प्राप्त हो। आवास, रोटी, कपड़ा मिले। यद्यपि मैं देखता हूं, महानगरों में भीख मांगना भी एक व्यवसाय हो चूका है। लेकिन मैं मार्क करता हूं, यहां से जाता हूं तब छोटे-छोटे बच्चें जिस तरह भीख मांग रहे हैं, टूटे-फटे कपड़े पहने हैं, धूलधुसरित बदन हैं! भारत का बालकृष्ण कैसा भीखमंगा हो गया है! राजधानियों का कर्तव्य है इनको मिले। आज मुझे एक भाई ने पूछा है, 'शासक को कठोर रहना चाहिए कि कोमल रहना चाहिए?' समर्थ के सामने कठोर होना चाहिए, असमर्थ के सामने कोमल होना चाहिए। जो कठोर है उसको दंड देना चाहिए। 'मानस' का संविधान देखो, वालि को दंड और सुग्रीव को क्षमा।

सावधानी, गुडधानी, राजधानियों का कर्तव्य होना ही चाहिए। हमारे यहां शब्द है 'प्रधान'। लेकिन पंजाब की ओर जाओ तो कहा जाता है 'परधान'। राजधानियों में प्रधान होते हैं, उसकी परधानी है, उसकी प्रमुखता है, उसकी विशेषता है। तो, जो प्रधान है उसको अपनी विशेषता का सदुपयोग करना चाहिए। मेरी दृष्टि में राजधानी एक अनुसंधान में डूबी होनी चाहिए; प्रत्येक के साथ उसका अनुसंधान हो। राजधानी का कर्तव्य है कि प्रत्येक को सुने और प्रत्येक का जवाब दे। ये कुछ बातें जरूरी है,। केवल शब्द का खेल है, मैं समझता हूं, लेकिन सूत्र के रूप में राजधानियोंका ये कर्तव्य है।

तुलसीदासजी ने 'मानस' में नव बार 'रजधानी' शब्द का प्रयोग किया है। मैं आपके सामने वो बता दूं -

राजा रामु अवध रजधानी।
गावत गुन सुर मुनि बर बानी।।

•

अब तुम्ह मम अनुसासन मानी।
बसहु जाइ सुरपति रजधानी।।

•

सुंदर सहज अगम अनुमानी।
कीन्ह तहाँ रावन रजधानी।।

•

जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी।
आवहिं बहुरि रामु रजधानी।।

•

भट जम नियम सैल रजधानी।
सांति सुमति सुचि सुंदर रानी।।

•

राजा रामु जानकी रानी।
आनंद अवधि अवध रजधानी।।

•

तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी।
पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी।।

•

नगर नारि नर गुर सिख मानी।
वसे सुखेन राम रजधानी।।

कभी-कभी क्या होता है कि हम राजधानी में रहते हो लेकिन राजधानी के प्रभाव से अनभिज्ञ होते हैं! कागभुशुंडिजी का ऐसा मंतव्य आया है कि मैं अवध में आया, लेकिन उस समय मैंने अवध की महिमा जानी नहीं। ऐसा हो सकता है। कभी-कभी हम कथा में आए, लेकिन कथा की महिमा बिलकुल जाने बिना ही लौट जाए! किसी बुद्धपुरुष के पास जाए, लेकिन हो सकता है अनभिज्ञ रह जाए! ऐसी एक पंक्ति, नवमी बार -

जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी।
तदपि न कछु महिमा तब जानी।।

तो, ये हुआ नव बार 'रजधानी' शब्द का प्रयोग। अब, आज एक प्रश्न, ''बापू! सद्गुरु की राजधानी चित्रकूट की चर्चा की, लेकिन जिस शास्त्र की आप इतनी महिमा कर रहे हैं इस पर भी चर्चा हो कि शास्त्र की राजधानी कौन?''

अच्छा प्रश्न। जरा सूक्ष्म। शास्त्र, वेदादि शास्त्र। तो बाप, शास्त्र की राजधानी कौन? कोई भी पवित्र ग्रंथ हो, सब अपनी-अपनी जगह महान है। फ़र्क इतना है कि कुछ ग्रंथ आदेशात्मक बोलते हैं, कुछ ग्रंथ मित्र की बोली बोलते हैं, जैसे कि 'भगवद्गीता'। आप वेद ले तो उसमें आदेश आता है। कुछ ग्रंथ ऐसे हैं कि जिनमें दो प्रेमियों की भाषा है। ये ज्यादा अच्छा लगता है। हो शास्त्र लेकिन एक-दूसरे ऐसे बातें कर रहे हो कि मानो एक-दूसरे के प्रेमपत्र पढ़ रहे हैं! आदेशात्मक बोली में जब कोई ग्रंथ बात करता है तब उसका स्थान मस्तिष्क होता है। मैत्री के बोल में जब कोई ग्रंथ बात करे तो उसका स्थान हाथ में होता है। और प्रेममूलक बात होती हो तब उसकी राजधानी दोनों का हृदय होती है। मुझे कहना ये है, ऐसा शास्त्र जिसकी राजधानी मानव का हृदय हो। और मेरे पास तो प्रमाण है। होठ पे शास्त्र रहे तो बात अच्छी है। तो, कहीं-कहीं शास्त्र होठों पर केन्द्रित हो गए। कहीं-कहीं हस्तामलक, बड़ा प्यारा शब्द है, हाथ में शास्त्र आ जाए। हाथ में शास्त्र आ जाए इसका मतलब कि क्रिया में शास्त्र आ जाए, जो सूत्र हम बोलते हैं वो करे भी। अथवा तो आसानी से शास्त्र अपना रहस्य खोले। लेकिन प्रेमप्रधान शास्त्र मानवी के हृदय में रहता है। ये ज्यादा जरूरी है। उसका 'मानस' में प्रमाण है। धर्मग्रंथ तो शासक है। 'शास्ता' है, जैनों की बोली में। प्रत्येक धर्मग्रंथ अपनेआप में सम्राट है। और 'रामचरित मानस' में शास्त्र, युवती और राजा तीनों को एक साथ रखा है। तीनों किसी के वश नहीं होते। शास्त्र हमारे वश नहीं होते, शास्त्र के वश में हम होते हैं।

तो, दिल में कभी ऐसा आए तो चूक हो सकती है, शास्त्र स्वयं गिरा देता है। तो, उसकी राजधानी मेरी समझ में हृदय होनी चाहिए, केवल हाथ नहीं, दिमाग नहीं। प्रमाण है -

रचि महेस निज मानस राखा।

'रामचरित मानस'रूपी एक अद्वितीय शास्त्र की रचना करके भगवान शंकर ने अपने हृदय में रखा। तो, हृदय हो गया शास्त्र की राजधानी।

अब, शास्त्र का अनुगमन कौन करे? उसकी पटरानी कौन? सद्गुरु के चरणों में बैठकर जिन्होंने गुरुमुख शास्त्र प्राप्त किया हो ऐसा साधक ही शास्त्र की छाया है। यही 'रामचरित मानस' हमारे पास हो लेकिन जब गुरु रहस्य खोलते हैं तब ज्यादा मीठा लगता है। संदेह निर्मूलन गुरु बिना नहीं हो सकता। तो, शास्त्र की छाया बनता है ऐसा साधक जिन्होंने गुरु के प्रति समर्पण किया है। अब, सैनिक कौन? शास्त्र का सुभट्ट कौन? तुलसी ने जवाब ओलरेडी दिया है -

जे गावहिं यह चरित संभारे।
तेइ एहि ताल चतुर रखवारे।।

संभालपूर्वक, विवेकपूर्वक जैसा है वैसा शास्त्र का जो गायन करे वो उनके रक्षक है। महापुरुषों ने ऐसा भी अर्थ लगाया है कि इस चरित्र को, कृष्णचरित्र हो या रामचरित्र जो भी हो, इस चरित्र को संभालपूर्वक जो रखे वो रक्षक है। लेकिन ये अर्थ भी बड़ा प्यारा लगता है कि खुद के चरित्र को संभालकर जो गायन करे वो ही सच्चे रक्षक है। रामचरित कहने से पहले ये भी तो बहुत बड़ा दायित्व है। खुद का चरित्र संभालकर जो गाए यही उनके सुभट्ट है। एक महापुरुष तो कह रहे थे कि जो भी इसको गाएंगे उसको शास्त्र संभालेगा। जैसे भी गाओ, शास्त्र तुम्हारी रक्षा करेगा। तुलसीदासजी ने 'रामायण' के बारे में यही पंक्ति लिखी है -

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

अब मैं मेरी जिम्मेवारी से कहना चाहूं कि इस चरित्र का गायन चरित्र संभालकर अथवा तो शास्त्र को अन्याय न हो जाए ऐसे संभालकर जो शास्त्र कहे वो शास्त्र के रखवाले है। बोलनेवालों को ऐसा बोलना चाहिए कि जिस बोली से दूसरों का तेजोवध न हो। यहां कोई स्पर्धा करने थोड़े निकले हैं? वक्ता प्रत्येक का पोषक हो, शोषक न हो। वक्तव्य किसी के तेजोवध के लिए न हो। भगवान राम और रावण के बीच यही तफावत है। एक की बोली पोषक है, एक की बोली शोषक है। एक बोली तेज बढ़ाती है, एक बोली दूसरों के तेज को म्लान करने को तुली हुई है। कौन वक्ता शास्त्र का रक्षक है? शास्त्र, शस्त्र नहीं बनना चाहिए। ताकत हो तो शस्त्र को शास्त्र बना दो।

तो, शास्त्ररूपी सम्राट की राजधानी हृदय है; गुरुसमर्पित शिष्य उनकी छाया है और सैनिक संभालकर गानेवाला, ये उनके भट्ट है। और शास्त्र का सचिव कौन? तो, फिर मुझे यही कहना है -

सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू।
बिपिन सुहावन पावन देसू।।

मानसिकता वैराग्यवृत्ति की हो। भले हम संसार में हो; गुजरात में स्वामीनारायण संप्रदाय के एक संत हुए निष्कुळानंदजी, उसका बड़ा प्रसिद्ध पद 'त्याग न टके वैराग्य विना।' शास्त्र का सचिव भी वैराग्य होना चाहिए। शास्त्र आदमी को रागी न बना दे। और आखिर में शास्त्र की संपदा कौन? तो, 'भगवद्गीता' के न्याय से कहूं, दैवी संपदा यही शास्त्र की संपदा है। भौतिक नहीं, आध्यात्मिक संपदा बांटे। तो, ऐसे कुछ लक्षण। तो, शास्त्ररूपी सम्राट के ऐसे पहलूं।

कुछ ओर बातें। ''राजधर्म में सेवाधर्म का प्रतिशत कितना होना चाहिए?'' राजधर्म में सेवाधर्म प्राचीन है। लेकिन कठिन भी बहुत है। तुलसीदासजी कहते हैं, 'सेवा धरम कठिन जग जाना।' अत्यंत कठिन है सेवा। 'विश्वसमुदाय को किस सुदृष्टि की आवश्यकता है?' कई दृष्टियां होती है। मेरा तो इतना कहना है कि हर क्षेत्र में हम तीन वस्तु जितनी मात्रा में कर सके; सत्य, प्रेम और करुणा होनी चाहिए। सत्ता हो और सत् न हो

तो बेकार! प्रेम न हो, करुणा न हो तो बेकार! ये हरेक क्षेत्र को छूनेवाले सूत्र है।

मूल जो बात हमने इस कथा में पकड़ी है उसको यहां रखते हुए थोड़ा कथा का मूल-मूल बिंदुओं को स्पर्श करते हुए मैं आगे ले चलूं। हमने बड़े संक्षिप्त में परात्पर ब्रह्म का प्राकट्योत्सव मनाया। तीनों माताओं ने पुत्र को जनम दिया। अवध आनंद से भर गई। फिर तो चारों लालन बड़े होने लगे। और नामकरण का समय आया। चारों भाईयों का नामकरण वशिष्ठजी करते हैं। कौशल्यानंदन की ओर संकेत करते हुए वशिष्ठजी ने कहा, 'ये बालक का जो नाम लेगा वो आराम, विराम, विश्राम को पाएगा।' जिसका नाम विश्राम देगा और आराम देगा। क्या मतलब? तन को हरिनाम आराम देगा, मन को विश्राम देगा और विकारों को हरिनाम विराम देगा - ये तीन बाबत जुड़ी हुई है। 'इसलिए मैं इस बालक का नाम 'राम' रखता हूं।' रामनाम आदि-अनादि है।

राम के समान ही वर्ण, स्वभाव, कैकेयीपुत्र, वशिष्ठजी ने उसको देखकर कहा, 'राजन्! मुझे लगता है, ये बालक पूरे विश्व को भर देगा।' आदमी प्रेम से ही भरा जाता है, ओर चीज से आदमी को पूरा भरना मुश्किल है। और आदमी का पोषण त्याग से होता है। 'रामचरित मानस' में भरतजी प्रेममूर्ति भी है और त्यागी का विग्रह भी माना जाए। 'इनका नाम लेने से ये गुन, साधक में आएगा इसलिए इस बालक का नाम 'भरत' रखता हूं।' जिसके नाम से शत्रुबुद्धि का नाश होगा; वैरी नहीं, वैर खत्म होगा इस बालक का नाम भगवान वशिष्ठजी ने शत्रुघ्न रखा। और परम उदार, सबका

आधार, रामजी के जीवनभर पीछे चलनेवाला, समस्त लक्षणों का धाम ऐसा ये सुमित्रा का पुत्र, जो शेषावतार है उसका नाम गुरुदेव ने लक्ष्मण रखा। और वशिष्ठजी ने कहा, 'तुम्हारे ये चारों पुत्र, वेद के तत्त्व है।' मेरी बोली में मैं कहता हूं, राम केवल दशरथ का पुत्र ही नहीं, वेद का सूत्र है और विश्व का नेत्र है। राम की दृष्टि से जगत को देखना।

चारों भाई बड़े होने लगे। यज्ञोपवित संस्कार हुए। चारों भाई गुरु के आश्रम में विद्या प्राप्त करने के लिए गए। अल्पकाल में सब विद्या प्राप्त की। जिसकी सांस में चारों वेद हो उसे क्या पढ़ना? लेकिन जगत को दिखाया कि मैं ब्रह्म हूं तो भी, मुझे भी किसी गुरु की शरण में जाकर विद्या अर्जित करनी पड़ती है।

चारों भाई कुमार अवस्था में आए। विश्वामित्र आते हैं। यज्ञ में राक्षस बाधा करते हैं। दशरथजी से संपदा नहीं, संपत्ति नहीं, संतति मागते हैं। भारत का ऋषि किसी सम्राट के घर जाता है तो संपत्ति नहीं मांगता। उसने संपत्ति न मांगी, संतति मागी यज्ञरक्षा के लिए कि भारत के जो मूलतत्त्व है उसकी सुरक्षा के लिए आप अपने पुत्र दो। शुरू में दशरथजी मना करते है। लेकिन वशिष्ठजी ने दरमियानी की और दो पुत्रों को सौंपा। भगवान बाबा के साथ निकल पड़े। पदयात्रा आरंभ होती है। ताड़का नामक राक्षसी दौड़ आई। और भगवान राम के अवतार कार्य का आरंभ होता है। भगवान राम ने एक ही बान से ताड़का को तारी, निर्वाण दे दिया। विश्वामित्र पहचान गए कि ये बालक नहीं है, ब्रह्म है। आश्रम में आए। भगवान राम-लक्ष्मण सुरक्षा के लिए खड़े हुए हैं। यज्ञ में आहुतियां डाली जा रही है। और मारीच और सुबाहु दौड़े। मारीच को बिना फने का बान मारकर सागर के तट पर फैंक दिया। सुबाहु को अग्नि के बाण से जलाकर भस्म कर दिया। असुरों को निर्वाण दिया और यज्ञ सफल हुआ। कुछ दिन ठाकुर रहे। फिर विश्वामित्र ने कहा, 'राघव, अभी दो यज्ञ बाकी है। एक अहल्यावाला यज्ञ बाकी है और दूसरा जनकपुर का धनुषयज्ञ बाकी है। आप कहे तो मैं मिथिला ले चलूं?'

महात्मा के साथ भगवान ने पदयात्रा शुरू की। क्यों? क्योंकि भगवान रथ में बैठकर स्पीड में चले जाय तो समाज की अहल्याओं का उद्धार कौन करेगा? इसलिए प्रभु पदयात्रा करते हैं। मुनि के संग यात्रा होती है और बहुत महत्त्व का प्रसंग 'रामचरित मानस' का ये प्रसंग। कोई शिलादेह, मानो बिलकुल अचेतन, सुनमुन कोई पड़ा है! भगवान ने विश्वामित्र से कहा, 'बाबा, ये कौन है?' तब विश्वामित्रजी बोले -

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।

'राघव! ये पथ्थर की एक मूर्तिवत् जो बैठी है वो गौतमनारी अहल्या है।' और मुझे ये पक्ष बहुत अच्छा लगता है, भारत का साधु सदैव तिरस्कृतों के पक्ष में खड़ा है। क्या कहा विश्वामित्र ने? 'राम! ये शापवश हुई है, पापवश नहीं।' इन्सान है, थोड़ी भूल हो गई तो क्या हो गया? लेकिन उनके पति ने शाप दिया इसलिए पथ्थर देह हो गई। पथ्थरदेह मिन्स, कोई बुलाता नहीं है। और मुझे ये बात समझ में नहीं आती कि हरवक्त नारी को ही दंड क्यों दिया जाता है? इन्द्र को दंड मिलना चाहिए था। गुनहगार तो वो भी है। लेकिन सब छोड़कर भाग गए!

मैंने बीच में आपको कहा कि अवतार तीन काम करता है, कुछ शासक प्रचारक होते हैं, उद्धारक होते हैं, स्वीकारक होते हैं। कृष्ण और राम को ऐसे प्रचार

नहीं करना पड़ा; प्रचार तो अपनेआप हुआ। ये उद्धारक है। और उद्धार करके फैंकनेवाले नहीं, स्वीकारक भी है। स्वीकारक होना मुश्किल है। राम स्वीकार करते हैं, सबको स्वीकारते हैं। धर्मजगत को ये मंत्र के बारे में सोचना चाहिए कि दुनिया को सुधारनी नहीं है, दुनिया के जो हो उनको स्वीकारना है। और ठाकुर रामभद्र से कहा विश्वामित्र ने कि समर्थ के साथ कर्म का कानून लगाना। ये समर्थ नहीं है, पतिता बनकर पड़ी है, उसके साथ कृपा कीजिए। परमात्मा की चरणरज का स्पर्श होते ही 'प्रकट भई तपपुंज सही।' की हुई भूल का प्रायश्चित्त सबसे बड़ा तप है। खड़ी होती है और सामने ही ठाकुर को देखा। रो पड़ी! कभी तिरस्कृतों को प्यार करो और उनकी आंख में आंसू आए तब पता लगेगा कि अध्यात्म क्या है? मेरे पास फ़राज़ साहब का एक शे'र है। राम को प्रेम प्रिय है, पूजा नहीं, प्रतिष्ठा नहीं।

बस यही समझकर तुझसे मोहब्बत करता हूं फराज़,
मेरा तो कोई नहीं है, लेकिन तेरा तो कोई हो।

भले तू कबूल करेन करे। तुझे लगे कि दुनिया में मेरा भी कोई है। कितनी करुणा है मोहब्बत में!

हमें अपनी मोहब्बत पे इतना यकीं तो है फराज़,
वो मुझे छोड़ सकता है मगर भूल नहीं सकता।

ये प्रेम है। फरो पतितों की ओर। राम ऐसे पतितों के है।

अहल्या का उद्धार हुआ। और फिर भगवान वहीं से आगे बढ़े। गंगा तट पर आए। विश्वामित्र भगवान ने रामजी को गंगाअवतरण की कथा सुनाई। और उसके बाद प्रभु बाबा के संग जनकपुर पहूंचते हैं और एक आंबावाडी में निवास करते हैं। जनक को पता लगा तब स्वागत करने गए विश्वामित्र का। और राम को देखकर जनकराज स्तंभित हो गए! नामरूप को मिथ्या समझनेवाले विदेहराज आज राम को देखते ही डूब गए! विदेहराज ने जब पूछा कि मुझे इनसे प्रेम क्यों हो गया, तब विश्वामित्र ने क्या कहा?

ये प्रिय सबहि जहां लगि प्रानी।

साहब! दुनिया में सबको प्रिय होना, संत और भगवंत के बिना किसी की ताकत नहीं। ये परम तत्त्व सबके प्रिय है, ऐसा संकेत विश्वामित्र ने गर्भित कह दिया। स्वागत करके सुंदरसदन में निवास करवाया।

> कोई भी पवित्र ग्रंथ हो, सब अपनी-अपनी जगह महान है। फ़र्क इतना है कि कुछ ग्रंथ आदेशात्मक बोलते हैं, कुछ ग्रंथ मित्र की बोली बोलते हैं, जैसे कि 'भगवद्गीता'। आप वेद लो तो उसमें आदेश आता है। कुछ ग्रंथ ऐसे हैं कि जिनमें दो प्रेमियों की भाषा है। वो ज्यादा अच्छा लगता है। हो शास्त्र लेकिन एक-दूसरे ऐसी बातें कर रहे हो कि मानो एक-दूसरे के प्रेमपत्र पढ़ रहे हैं! आदेशात्मक बोली में जब कोई ग्रंथ बात करता है तब उसका स्थान मस्तिष्क होता है। मैत्री के बोल में जब कोई ग्रंथ बात करे तो उसका स्थान हाथ में होता है। और प्रेममूलक बात होती हो तब उसकी राजधानी दोनों का हृदय होती है।

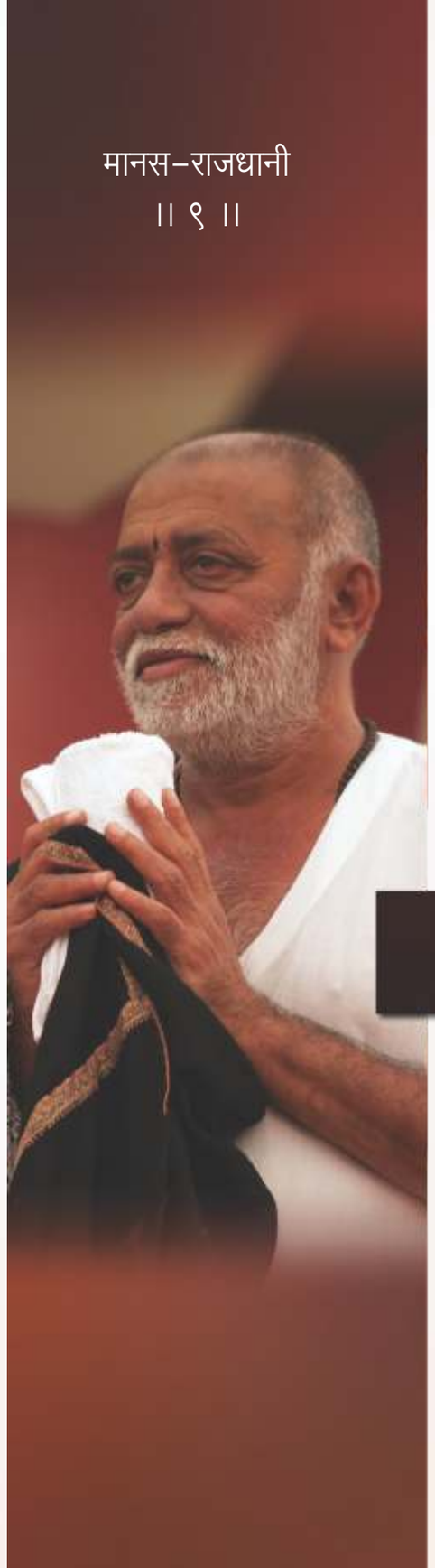

'मानस-राजधानी' जिसको केन्द्र में रखते हुए 'मानस' के मूल को पकड़कर मूल के कारण खिले हुए नए फूलों की खुश्बू हम ले रहे हैं। आओ, कुछ आगे दर्शन करें। आज विश्राम का दिन है, मेरे पास बहुत-से प्रश्न है। लेकिन इससे पहले मैं कथा पूरी कर दूं।

भगवान जनकपुर में है। सायंकाल को प्रभु नगरदर्शन के लिए बाबा विश्वामित्र की आज्ञा पाकर जाते है। दूसरे दिन सुबह जनक की पुष्पवाटिका में आते हैं। यद्यपि सीता-राम अभिन्न है, फिर भी लीला के लिए, एक ही ब्रह्म ने दो विग्रह धारण किए, एक सीता नाम से, एक राम नाम से। उनकी प्रथम भेंट पुष्पवाटिका में होती है। फिर वहां जानकीजी पार्वती की स्तुति करती है। माँ पार्वती ने आशीर्वाद दिया, 'जानकी! तेरे मन में जो सहज सुंदर वर है वो मिलेगा।' याद रखना, सहज सुंदरता का दर्शन करने से दर्शक के दुःख कटते हैं। कभी चुकना मत, शिकारी आंखें लेकर मत जाना, पूजारी आंखें लेकर जाना। होना चाहिए सहज सुंदर। हम और आप जितनी मात्रा में अंदर से, बाहर से सहज रहेंगे तो प्रकृति हमारे संगीत में ताल देगी।

प्रेमरूपी तप शरीर के सभी केमिकल्स बदल देता है

आज मुझे आपको बहुत खुश करके जाना है। मेरी भीतर की अवस्था मैं कैसे बताऊं? लेकिन मुझे अमितोष ने उस दिन वो ग़ज़ल सुनाई थी -

जो बांटता फिरता था जमानेको उज़ाला,
उस शख्स के दामन में अंधेरा भी बहुत है।
ये सच है कि तूने मुझे चाहा बहुत है,
लेकिन मेरी आंखों को रुलाया भी बहुत है।

- 'शाद' मुरादाबादी

आंतर-बाह्य सहज पवित्र सुंदरता। ऐसी सुंदरता का दर्शन साधक के पाप और दु:ख को क्रमश: काटता है। किसी के दर्शन से आदमी की आंखें क्यों डबडबा जाती है? तुम्हारा संगदिल पिघला। तुम सोलह शृंगार में सजे हो, मुबारक, तुम बहुत आनंद में हो, लेकिन किसी के दर्शन में आपकी आंख में आंसू निकले, समझना, उस समय तुम तपस्वी हो। तप के बिना हृदय को कोई पिघला नहीं सकता। तप एक उष्णता है। प्यार अपनेआप में एक तप है, हमारी भीतर की ग्रंथि को पिघला देता है। और पिघलते ही तप के कारण ये पानी उपर चढ़ता है। यही तप है। प्रेमरूपी तप शरीर के सभी केमिकल्स बदल देता है।

जो तप शुद्ध करने का वरदान दे सकता है उसने हमें सिद्धियों में उलझा दिया! हम किसी न किसी प्रारब्धकर्म के कारण इतने जड़ बन गए हैं! लेकिन कोई ऐसा सुंदर रूप, ऐसे केन्द्रबिंदु को हम छूते हैं तो 'जुगल नयन जलधार', नेत्र का अश्रुप्रपात हमारे पाप को नष्ट होने का प्रमाण है। क्यों रोते हैं? हम कोई ऐसे बिंदु को छूते हैं। और ऐसे बिंदु के टच में रहने का जितना ज्यादा अभ्यास हमें हो जाए, इतना हम विशेष पवित्र हो जाते हैं। और जितने ज्यादा हम पवित्र होते जाएंगे इतनी हमारी प्रसन्नता बढ़ेगी। प्रसन्नता को कौन रोके हुए है? अपवित्रता। और जितनी प्रसन्नता बढ़ती है, इतना परमात्मा हमें महसूस होता है, रूबरू होता है।

ये जीवन क्या है? मेरी दृष्टि में जीवन के कुछ दस-ग्यारह बिंदु है। मेरी दृष्टि में पहला केन्द्र जीवन का है, मंथन। जीवन एक मंथन है। दूध में खटाई डाल दो और दहीं हो जाए और उपर एक ढांकन ढांक दो। जीवन है दधिमंथन, जिससे नवनीत निकले। और एक वस्तु पक्की है, सुर हो, असुर हो, कोई भी हो, मंथन इसीलिए किया जाता है कि अमृत की प्राप्ति हो। लेकिन ये बिलकुल सत्य है कि जो-जो मंथन की प्रक्रिया से गुज़रे, अमृत तो बाद में मिला, पहले ज़हर मिला। अमृत की प्रतीक्षा करनेवालों को तैयार रहना पड़ता है मंथन से निकलनेवाले ज़हर को पीने। और ऐसे ज़हर को पीने के लिए शिवत्व का स्मरण बहुत आवश्यक है। जीवन है मंथन।

जीवन है एक चिंतन। खूब सोचो। दूसरे के बारे में नहीं, खुद के बारे में। मेरे पास एक प्रश्न है कि, ''बापू, आप कहते हैं कि मैं सबका स्वीकार करता हूं और आप जान जाए कि ये बहुत बुरा है, फिर भी आप स्वीकार करते हैं?'' सुनो, प्लीज़, उसको अन्यथा मत लेना। मुझे उसका ओर पक्ष दिखाई ही नहीं देता। मुझे उसमें जो अच्छाई है, और ये अच्छाई के कारण कबूल करूं। हमारी बुराई देखे तो कभी ठाकुर कबूल कर सकता है? मैं तो परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि मुझे आदमी का वो पक्ष दिखे ही ना! स्वीकार का अर्थ है इस रूप में। अहल्या के अवगुण देखे जाते तो ठाकुर उसका उद्धार, स्वीकार नहीं करते। हम और आप, ये चिंतन करे। जीवन का एक केन्द्र है मेरी समझ में, चिंतन।

जीवन का एक तीसरा केन्द्रबिंदु है, दर्शन। परखो, देखो, पहचानो। तुरंत कोमेन्ट मत करो। क्या राफडामांथी क्यो भुजंग नीकळे, कही न शकाय! जीवन है एक दर्शन। जीवन है तर्पण। मेरे गोस्वामजी 'विनयपत्रिका' से सीख देते हैं -

प्रेम-बारि-तरपन भलो, धृत सहज सनेहु।

संसय-समिध, अगिनि छमा, ममता-बलि देहु।।

पांचवां केन्द्र है, जीवन है आवागमन। आए, गुज़रे। आज है, कल नहीं होंगे। निरंतर आवागमन। और मुझे कहने दो, जीवन है गायन। गाओ, उसको खूब गाओ। जीवन को गाना चाहिए। जीवन एक नगमा है। जीवन एक संगीत है। सूर-स्वर का संगम है जीवन। हमारे यहां कई ऐसी उपासनापद्धति आई, उसमें गाने को मना फरमाया है! कृष्ण ने, गोपियों ने, गुरुनानकदेव ने गाया है। गाओ, आत्मा श्रोता बने। जीवन एक कविता है परमात्मा की रची हुई। जीवन एक गज़ल है, इनमें कई शे'र है। उसमें कोई एक ही विषय नहीं चलता, बिलग-बिलग विषय होता है। जीवन कई अध्यायों का एक अखंड काव्य है। जीवन महाकाव्य है।

आगे कहूं तो, जीवन एक नर्तन है। दुनिया कुछ भी कहे, तुम प्रसन्न रहो। क्या बुरा है? मैं फिर इस उपनिषद के सूत्र को आपके सामने रखूं, 'आत्मा नर्तक:।' ऐसे कुछ बिंदुओं को उपासना बनाई जाए। ऐसे कोई जीवनअमृत से भरे बिंदुओं के स्पर्श में तप किया जाए।

तो, पार्वती बोली, जानकी ने सुना। जानकी को आशीर्वाद मिला। फिर दूसरे दिन धनुषयज्ञ का अवसर। बड़े राजे-महाराजे कुछ न कर पाए धनुष को! और आखिर में भगवान राम खड़े होते हैं गुरु की आज्ञा लेकर। मेरे तुलसीदासजी बहुत अच्छा लिखते हैं वहां, जितने राजा आए थे वो इष्टदेव को लेकर आऐ थे, लेकिन कोई गुरु को लेकर नहीं आया था। इष्टदेव को लाख साथ में रखो, लेकिन गुरु की गैरमौजुदगी होगी तो अहंकार का धनुष टूटेगा नहीं। राम गुरु को लेकर आए। रामजी ने परिकम्मा की। क्षणार्ध में ठाकुर ने कैसे धनुष उठाया, कैसे खिंचा, कौन देख पाता है? धनुषभंग हुआ। फिर परशुरामबाबा आए। बाबा परशुराम और प्रभु का संवाद। और आखिर में भगवान के मर्मवाक्य को सुनकर परशुरामजी अवकाश प्राप्त कर गए।

महाराज दशरथ अयोध्या को लेकर आए। मागशीर्ष शुक्ल पंचमी का दिन आया। फिर, अद्‌भुत लोक-वेदरीति से ब्याह सम्पन्न होता है। जानकी की तरह मांडवी, श्रुतकीर्ति, ऊर्मिलाजी और दोनों भाईयों के साथ ब्याह होता है। विवाह सम्पन्न हुआ। बेटी की बिदा बड़े-बड़े ज्ञानी को ज्ञान का विस्मरण करा देती है। जनक की आंखें डबडबा गई, जब वैदेही ने बिदाई के कदम रखें। बारात अयोध्या पहुंचती है। वहां भी फिर बहुत उत्सव, आनंद! मेहमानों की बिदा हुई। फिर महाराज विश्वामित्र की बिदा की पल आई। जिस बाबा के अनुग्रह से कितना आनंदवर्धन हुआ था वो एक बाबा विश्वामित्र बिदा लेनेवाला है तब दशरथजी सपरिवार ढीले होकर विश्वामित्र के चरण पकड़कर बोले -

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।

मैं सेवकु समेत सुत नारी।।

बहुत सुंदर बोले दशरथजी, 'विश्वामित्र बाबा, ये तमाम संपदा आपकी है। मैं मेरे परिवार के साथ आपका सेवकमात्र हूं। 'हम आपके बच्चे हैं। हम बच्चों पर अनुग्रह करते रहिएगा। आपकी साधना में बाधा नहीं बनना चाहते, लेकिन इनमें से कभी अवकाश हो और आपको हमारी याद आए तो हम तो ना आ पाए, लेकिन आप अयोध्या आकर हमें दर्शन देते रहिएगा।' क्या साधु-संतो से मांगेगे? मांगना है तो यही मांगो कि हमें संत के दर्शन हो। ऐसे संत के दर्शन से पातक मिटते हैं। साधु-संतो के पास जाकर बहुत बोल-बोल मत करना, जिज्ञासा रखना। उसे ताकते रहो, ताकते रहने में ताकत मिलती है। साधु का दर्शन दु:ख मिटाता है। बाबा विश्वामित्र गए। 'बालकांड' पूरा हुआ।

'अयोध्याकांड' के आरंभ में प्रभु का वनवास हुआ। प्रभु तमसा, शृंगबेरपुर, प्रयाग होते हुए चित्रकूट पहुंचे। महाराज दशरथजी ने रामविरह में प्राणत्याग किए। दशरथजी ने छः बार 'राम' कहकर प्राणत्याग किया। भरतजी आए। अब भरतचरित्र को तो क्या कहना! केवल प्रणाम करके ही चलो। पितृक्रिया हुई। सभा मिली। सबने भरत को समझाया कि पिता जिसको राज दे वो अधिकारी है। तब भरतजी ने कहा, 'मुझे माफ करिएगा। मेरे रोग का इलाज सत्ता का दर्शन नहीं, सत् का दर्शन है। मेरे रोग का इलाज पद से नहीं, पादुका से होगा।' पूरी अवध चित्रकूट जाती है। बहुत-सी चर्चाए हुई। लेकिन जब आखिर में सब भरत पर आ गया कि क्या किया जाए, तब भरत ने कहा -

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।

करुना सागर कीजिअ सोई।।

याद रखना, प्रेम दबाव नहीं डाल सकता, प्रेम अपना स्वभाव दिखा सकता है। प्रेम का क्या धर्म है? स्वभावदर्शन कराना। प्रेम कभी प्रेमी को दबाव नहीं दे सकता। भरत ने प्रेम का स्वभाव दिखाया और कहा, 'ठाकुर! हमारा जो हो, आपका मन प्रसन्न हो ऐसा निर्णय करो।' प्रभु चूप हो गए कि क्या भक्त का समर्पण है! 'मुझे कुछ आधार दो, जिस आधार पर मैं चौदह साल जी सकूं।'

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।

सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।

ठाकुर ने कृपा करके पादुका दी। पादुका खरीदी नहीं जा सकती, कृपा से प्राप्त होती है। और श्री भरतजी ने पादुका को श्रद्धायुक्त भाव से मस्तक पर रखी। भरत ने बिदा ली। अवध पहूंचे।

एक दिन गुरु वशिष्ठजी से पूछकर भरतजी ने कहा, 'आप मुझे आज्ञा दे तो मैं नियम के साथ नंदिग्राम

में निवास करूं। मैं अयोध्या के सिंहासन पर पादुका को स्थापित करके राजधानी का सब कर्तव्य निभाऊंगा।' वशिष्ठजी बहुत सुंदर बोले, 'भरत, हम बोलते हैं वो धर्म है, लेकिन कहने दो, तुम जो बोलते हो वो धर्म का सार है। इसलिए आप जो निर्णय करे। लेकिन एक बात, माँ कौशल्या की आज्ञा लो और माँ का दिल दुभा तो तेरी रामभक्ति सफल नहीं होगी।' रघुकुल समर्पण का कुल है। सूर्य को दूसरों को रोशनी देने के लिए निरंतर तपना पड़ता है। जो बड़े कुल के होते हैं उसके दर्द वो ही जानते हैं। भरत के प्रेम की ये मंगलमय गाथा कहते-कहते तुलसी ने 'अयोध्याकांड' पूरा किया।

'अरण्यकांड' में प्रभु ने चित्रकूट से यात्रा की। अत्रि आश्रम, सरभंग, सुतीक्ष्ण, कुंभज - उसके साथ मंत्रणा करके रास्ते में गीधराज जटायु से मैत्री करके प्रभु पंचवटी निवास कर रहे हैं। पंचवटी में लक्ष्मण ने पांच प्रश्न पूछे। प्रभु ने उसके आध्यात्मिक उत्तर दिए। शूर्पणखा आई, दंडित हुई। खर-दूषण को प्रभु ने निर्वाण प्रदान किया। शूर्पणखा ने रावण को उकसाया। रावण ने सीता अपहरण की योजना बनाई। रावण जानकी के प्रतिबिंबरूप को चुरा ले जाता है। गीधराज जटायु ने सुरक्षा की कोशिश की, लेकिन आखिर में रावण ने पंख काट दिए। रावण जानकीजी को लेकर लंका में अशोकवन में रख देता है।

सीताविहीन कुटिया को देखकर रामजी प्राकृत मनुष्य की तरह रो पड़े। ये नरलीला है। जानकीजी की खोज करते जटायु तक पहुंचे। जटायु ने सब कथा की। पितातुल्य आदर देकर भगवान जटायु को निर्वाण देकर अग्निसंस्कार देते हैं। जटायु का उद्धार करके, रास्ते में कबंध का उद्धार करके, राम-लखन शबरी के आश्रम आए। शबरी के पास प्रभु आए। कंदमूलफल दिए। फिर शबरी अपना निवेदन करती है। शबरी को माध्यम बनाकर हमें नव प्रकार की भक्ति का वरदान ठाकुरजी ने दिया। प्रभु पंपासरोवर आए। वहां नारद मिले। 'अरण्यकांड' पूरा हुआ।

'किष्किन्धाकांड' में राम और हनुमानजी मिले। हनुमानजी के माध्यम से सुग्रीव जैसे विषयी को रामप्राप्ति हुई। वालि का प्राणभंग। सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य मिला। फिर योजना बनी जानकीखोज की। चारों दिशा में बंदर-भालू को भेज दिए। सब प्रभु को प्रणाम करके निकले। अंत में पीछे हनुमानजी ने प्रणाम किया। भगवान ने सोचा कि कार्य तो ये कर सकेगा, इसलिए मुद्रिका दी। सीताखोज का अभियान चला। जानकी अशोकवाटिका में है वो पक्का हुआ। जामवंतजी ने हनुमानजी का आह्वान किया। हनुमानजी पर्वताकार बने और जामवंत से मार्गदर्शन लिया। 'किष्किन्धाकांड' पूरा हुआ।

हनुमानजी लंका जाने के लिए तैयार। 'सुन्दरकांड' का आरंभ। श्रीहनुमानजी निकल पड़े। रास्ते की बाधाएं टलती गई। महल में जाकर हर मंदिर में हनुमानजी माँ की खोज कर रहे हैं। भोगदर्शन हुआ, भक्तिदर्शन नहीं हुआ। रावण का महल अतिविचित्र! सीता नहीं, शयन देखा। और हनुमानजी ने एक हरिमंदिर देखा विभीषण के आंगन में। हनुमान खुश हो गए। विभीषण जागा। दो संत मिले। भक्ति को प्राप्त करने की युक्ति विभीषण ने बताई। आखिर में माँ और बेटे की भेंट हुई। माँ ने आशीर्वाद दिया। हनुमानजी ने फल खाए और वृक्ष तोड़े। ये बंदरलीला है।

अक्षय आया। अक्षय का हनुमानजी ने क्षय किया। इन्द्रजित और हनुमानजी का तूमुल युद्ध। आखिर में ब्रह्मास्त्र का प्रयोग। हनुमानजी बंध गए। रावण ने मृत्युदंड का एलान किया। विभीषण आया। कहा, 'नीति मना करती है, दूत को मत मारो।' सब राक्षस संमत हुए। पूंछ

जलाने का निर्णय हुआ। हनुमानजी खुश हुए। पूंछ का मतलब है प्रतिष्ठा। संत कहता है, मेरी प्रतिष्ठा जल जाए तो मुझे कोई नुक्सान नहीं। साहब! भक्ति प्राप्त करता है उसको समाज जलाने की कोशिश करता है, लेकिन भक्तिप्राप्त संत जलानेवालों की मान्यता को जलाकर अजर-अमर हो जाता है। पूरी लंका जलती है। सागर में आए। पूंछ बुझाई। माँ के पास आए। चूड़ामणि दिया। हनुमानजी निकल पड़े। प्रभु ने कहा, 'अब विलंब न करे।'

अभियान शुरू। सागर के तट पर प्रभु का डेरा। यहां रावण की सभा। विभीषण ने सद्सलाह दी। रावण कुपित। भक्त को निकाल दिया। विभीषण प्रभु की शरण में। प्रभु ने शरणागत को आश्रय दिया और उसके बाद कहते हैं, अब क्या करे? तब कहा कि आपके कुल में समुद्र बड़ा है। तीन दिन आप व्रत करे। सागर मारग दे तो हमें कोई बल का प्रयोग नहीं करना है। भगवान वहां बैठे हैं। और तीन दिन बीते। समुद्र ने अपनी मूढ़ता का त्याग न किया। भगवान ने आखिर में तीर चढ़ाया और समंदर में खलभली मच गई! सागर प्रभु शरण में आया। कहा, 'भगवन्! सेतु बनाईए।' सेतुबंध का विचार प्रभु को अच्छा लगा। 'सुन्दरकांड' पूरा हुआ।

'लंकाकांड' का आरंभ हुआ। सेतुबंध निर्माण हुआ। भगवान ने सेतुबंध रामेश्वर की स्थापना की। फिर अभियान चला। लंका में पहुंचे। सुबेल पर डेरा। रावण का रसभंग हुआ। मंदोदरी ने रावण को समझाया, नहीं माना। दूसरे दिन सभा में राम की ओर से राजदूत के रूप में संधि का प्रस्ताव लेकर अंगद गया। संधि असफल। युद्ध अनिवार्य। बहुत युद्ध हुआ। सब राक्षस निर्वाण प्राप्त करते हैं। आखिर में रावण का निर्वाण होता है। रावण का तेज प्रभु के आनन में समा गया। रावण का संस्कार। विभीषण को राजतिलक। अग्नि में समाई हुई जानकी फिर अग्नि से पसार हुई। प्रभु के पास आई। आनंद की वर्षा। और उसके बाद भगवान पुष्पकारूढ होते हैं और भगवान निकले। मित्रों को लेकर उड़ान भरी, सेतुबंध दर्शन, मुनियों को मिलते हुए शृंगबेरपुर विमान आया। हनुमानजी को अयोध्या भेज दिया गया। 'लंकाकांड' पूरा किया।

'उत्तरकांड' के आरंभ में भरतजी की विरहव्यथा का वर्णन। डूबते आदमी को जहाज मिल जाए ऐसे हनुमानजी भरत को थाम लेते हैं। भगवान आए। पूरी अयोध्या उमटी। भगवान दौड़े। पृथ्वी को प्रणाम किया। हथियार छोड़कर गुरु के चरण में जाते हैं। भरत और राम भेंटे। सभी को ठाकुर ने ब्रह्म साक्षात्कार अपनी-अपनी इच्छा के अनुकूल कराया। उसके साथ, भगवान कैकेयी के महल में पहले गए। सब रो पड़े। चौदह साल का विरह टूटा। वशिष्ठजी ने कहा कि अब विलंब न करे। दिव्य सिंहासन मंगवाया। और भगवान राम राज्यारोहण के लिए तैयार। और सभी को प्रणाम करके राज्य सिंहासन पर रामजी बिराजमान हुए। और गोस्वामीजी लिखते हैं -

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।

पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

भगवान वशिष्ठजी ने विश्व को रामराज्य देते हुए भाल में तिलक किया। त्रिभुवन में जयजयकार हुआ। दिव्य रामराज्य का स्थापन हुआ। छ मास बीतें, मित्रों को बिदाय। फिर हनुमानजी एक रुके। नरलीला है ठाकुर की। समयमर्यादा पूरी होते जानकीजी ने दो पुत्रों को जनम दिया। अयोध्या के, रघुवंश के वारिश का नाम देकर रामकथा को विराम दे दिया। जानकीजी का दूसरी बार का त्याग आदि दुर्वाद, अपवादवाली कथा तुलीजी नहीं लिखते हैं। तुलसी का मंत्र है संवाद।

फिर कथा है वो तो कागभुशुंडिजी का चरित्र है। गरुड का मोह, भुशुंडिजी के पास कथाश्रवण, मोह से मुक्ति, गरुड अपने सद्गुरु को प्रणाम करके वैकुंठ गया। याज्ञवल्क्य महाराज ने कथा विराम की कि नहीं, रहस्य है। यहां भगवान शंकर ने भी पार्वती के सामने कथा को विराम दिया। तीनों आचार्यों ने कथा को विराम दिया और कलिपावनावतार पूजनीय तुलसीदासजी दीनता के घाट से कथा को विराम देते हुए आखिर में बोले -

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।

पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

बाप! इन चारों परम आचार्यों ने अपने श्रोताओं के सामने कथा को विराम दिया। इन चारों की आशीर्वादक छाया में भारत की राजधानी दिल्ही में आपके द्वारा आयोजित ये नवदिवसीय कथा में इस व्यासपीठ से रामकथा अंतर्गत 'मानस राजधानी' की चर्चा हो रही थी। उसको मैं विराम देने की ओर हूं तब क्या कहूं? लगता है, सब कुछ कह दिया और ये भी लगता है सब कुछ रह गया!

मेरे भाई-बहन, मुझे जाते-जाते कुछ कहना है। 'राजधानी।' इन चारों अक्षर को हम समझें। 'रा' का मतलब है, जिस भूमि में राम हो; मिन्स, सत्य-प्रेम-करुणा हो। 'ज' का अर्थ मेरी व्यासपीठ करती है, जगत। राजधानी केन्द्र में हो और पूरा हिन्दुस्तान इन राजधानी का जगत है। केन्द्र ही राजधानी बने वो राजधानी नहीं, आखिरी आदमी तक, पूरे जगत का जो ख्याल करे वो राजधानी। 'ज' का अर्थ, जतन करे वो स्थान। आखिरी व्यक्ति का जतन। 'धा' का अर्थ है, जिस राजधानी धनधान्यपूर्ण हो, कोई भूखा न हो। और 'नी' का अर्थ मैं करूं, या तो निर्वाण करो, या तो निर्माण करो, या तो सबको निहाल करो। जिस स्थान में सबका निहाल हो वो राजधानी। ऐसा जहां होता हो वो राजधानी है। आखिर का मेरा कहना है, ये 'मानस' राजधानी है।

आखिर में, इस 'मानस-राजधानी' को विराम दे रहा हूं। आशीर्वाद तो हम नहीं दे पाते, लेकिन व्यासपीठ पर बैठा हूं, आपके लिए प्रार्थना कर सकता हूं। परमात्मा सबको बहुत खुश रखे, प्रसन्न रखे, सम्पन्न रखे और सत्य-प्रेम-करुणा से प्रपन्न भी रखे। एक पंक्ति बोलूं?

खुश रहो हर खुशी है तुम्हारे लिए,

छोड़ दो आंसूओं को हमारे लिए ...

आईए, परमात्मा की बातें परमात्मा को समर्पित करें। नव दिवसीय रामकथा का ये फल किसको दूं? राजधानी में बैठा हूं। पूरा राष्ट्र बसता है राजधानी में। राजधानी में गाई गई 'मानस-राजधानी' की कथा का सुक्रित मैं समग्र भारत की जनता को समर्पित करता हूं।

ये जीवन क्या है? मेरी दृष्टि में जीवन के कुछ दस-ग्यारह बिंदु हैं। पहला केन्द्र जीवन का है, मंथन। जीवन एक मंथन है। जीवन है दधिमंथन, जिससे नवनीत निकले। जीवन है एक चिंतन। खूब सोचो; दूसरे के बारे में नहीं, खुद के बारे में। जीवन का एक तीसरा केन्द्रबिंदु है, दर्शन। और जीवन है तर्पण। पांचवां केन्द्र, जीवन है आवागमन। निरंतर आवागमन। और मुझे कहने दो, जीवन है गायन। गाओ, उसको खूब गाओ। जीवन को गाना चाहिए। जीवन एक ग़ज़ल है, इनमें कई शे'र हैं। आगे कहूं तो, जीवन एक नर्तन है। दुनिया कुछ भी कहे, तुम प्रसन्न रहो।

मानस-मुशायरा

ज़माने के सवालों को मैं हंसकर टाल देता हूं फ़राज़,
लेकिन नमी आंखों कहती है मुझे तुम याद आते हो।

•

बच न सका मौहब्बत के तकाज़ों से खुदा भी 'फ़राज़',
एक महबूब के खातिर सारा जहान बना दिया।

– अहमद फ़राज़

जो बांटता फिरता था जमानेको उज़ाला,
उस शख्स के दामन में अंधेरा भी बहुत है।

– 'शाद' मुरादाबादी

वो जहां भी रहेगा रोशनी लुटाएगा,
चरागों को कोई अपना मकां नहीं होता।

– 'वसीम' बरेलवी

न हारा है इश्क और न दुनिया थकी है।
दिया जल रहा है और हवा चल रही है।

– खुमार बाराबंकवी

न जाने कौन-से माहौल से वो हो के आया है,
मैं बिस्मिल कहता हूं और वो कातिल समझता है।

– 'मासुम' गाज़ियाबादी

यूं तो लोग खुदा को भी बुरा कहते हैं।
आपके कहने से कोई न बुरा होता है।
संग कितने भी उछाले मेरी जानिब दुनिया,
मेरे होठों पे सदा हर्फ़ दुआ होता है।

– डॉ. नवाज़ देवबंदी साहब

कवचिदन्यतोऽपि

सुख-दुःख, निंदा-स्तुति और स्वीकार-अस्वीकार में
सम रहे तो योगेश्वर हमारे पास ही हैं

'गीता-जयंती' के अवसर पर जोडियाधाम में मोरारिबापू का उद्‌बोधन

आज के परम पावन अवसर पर इतने वर्षों से जोडियाधाम में 'गीता जयंती' का सात्त्विक उत्सव आयोजित होता है इस प्रसंग पर सर्व प्रथम योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविंद में मानसिक दंडवत् कर उनके श्रीमुख में से प्रकट परम वाणी का वैश्विक ग्रंथ 'श्रीमद् भगवद्‌गीता' के सामने नतमस्तक होकर, जिनकी चेतना का सामीप्य पाकर यह सब हो रहा है ऐसे ब्रह्मलीन पूज्य विरागमुनिजी की चेतना को प्रणाम। समग्र 'गीता विद्यालय' का इस एक यज्ञकर्म में सातत्य बना रहे इसलिए जागृतिपूर्वक हम सब पर अहेतु भाव रखकर, निरंतर मार्गदर्शन करते पूज्य योगेशबापा शास्त्रीजी, पूजनीय लाभुदादा, 'गीता विद्यालय' के बालकों को प्रतिदिन स्वाध्याय कराते हुए पूजनीय शास्त्रीजी, अपने कथाकुल के सभी पूजनीय कथाकार

भाईयों-बहनों, गुरुजनों, 'गीता विद्यालय' के सभी बालक गण।

आज कलिप्रभाव हर जगह पर व्याप्त है ऐसे समय में भी 'गीता विद्यालय' अपनी रीति से पवित्र प्रवाह बहा रहा है इसका मुझे आनंद है। रामकथा की कृपा से और आप सबके आशीर्वाद से 'रामचरित मानस' ग्रंथ लेकर पृथ्वी नामक ग्रह पर जहां-जहां जाना हुआ है वे सभी स्थान पसंद है, परंतु कुछेक सविशेष पसंद है उनमें से एक जोडियाधाम है। यहां पर हूं तो प्रशंसा करने का हेतु नहीं है। मेरी प्रसन्नता व्यक्त कर रहा हूं। 'गीता जयंती' के ३९वें पावन पर्व पर मैं यहां आ सका इसका मुझे बहुत आनंद है। मेरे साथ कथा में जो वाद्यकार है वे सब यहीं की देन है। मैं तो तूंबडी लेकर निकला था, जोडिया ने कुछेक लड़के इसमें डाल दिए। प्रत्येक वर्ष यहां आने का विशेष आनंद है।

क्या कहूं? 'कहां से शुरू करूं, कहां तमाम करूं?' जो स्मरण में आता गया वह बोलता गया। आज समय का अभाव है। थोड़ा ही बोलूंगा। पर व्रत का निर्वाह हुआ इसका आनंद है। 'भगवद्गीता' पर कितना कुछ कहा गया। बारडोली आश्रम में नगीनदास बापा के प्रवचन 'गीता' पर थे। उन्होंने काफी अच्छी बातें बताई। उन्होंने कहा कि, 'गीता' को अच्छी तरह से समझना चाहते हैं तो उसके भाष्य बाद में देखिए। 'गीता' क्या कहती है यह सुनने के लिए कान सजग रखिए। अलग-अलग भाष्य हमें उलझन में भी डाल दे। हमारी बुद्धि स्थिर होनी चाहिए। सभी आचार्यों ने अपनी विचारधारापरक अर्थ खोजे। गाय कितनी ही सुंदर हो, आंखें सुंदर हो, पूंछ को आंखों से छुआकर शगुन करते हैं पर दूध तो थन से ही निकलता है। गाय का दूध कहां सबके नसीब में होता है? 'रामचरित मानस' भी क्या है? 'रामकथा कलिकामद गाई।' यह 'कामदुर्गा' गाय है। गाय के थन से ही दूध निकलता है। 'भगवद्गीता' डायरेक्ट कहती है। हमारी बुद्धि स्थिर हो तो महापुरुष के मंतव्य हमें बहुत उपयोगी होते हैं। बच्चें को माँ के पास जाना है तो बाप को पूछने की जरूरत कहां होती है? यह सीधा माँ की गोद में चला जाता है। 'गीता' संबंध में भी यही है। हम सीधे उनकी गोद में चले जाय या तो जब उनका वात्सल्य उफान पर होगा तब वह स्वयं गोद में ले लेगी। दो-तीन बातें कर के जाऊं।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिमम।।

'गीता' का यह समापन सूत्र मुझे बहुत पसंद है। इसमें माधुर्य है। जहां योगेश्वर कृष्ण है, धनुर्धर पार्थ है वहां विजय है। विभूति है, वहां सबकुछ है। यद्यपि विभूति और विजय के साथ मेरी जमती नहीं है। मुझे तो -

सीताराम चरण रति मोरे।

तो साहब, विजय और विभूति मेरे हिस्से की मैं दुनिया को दे दूं। उपर्युक्त पंक्ति से मेरा पेट भर गया है, अतः पुनः खाने की मेरी इच्छा नहीं है। 'गीता'कार ने कहा कि जहां योगेश्वर कृष्ण होंगे वहां पार्थ धनुर्धर होंगे, वहां सब होंगे। इसमें से कृष्ण-अर्जुन उड़ जाय तो वो विजय-विभूति रहते हैं। 'योगेश्वर' माने क्या? उसकी कृपा से ऐसा कौन-सा तत्त्व है कि हम बिना किसी अपेक्षा के पल-पल प्रसन्न रह सकें?

बाप, 'भगवद्गीता' ने 'योग' की कितनी व्याख्याएं दी! महापुरुषों के मतानुसार 'गीता' तीन विभाग में विभाजित है - कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग। 'गीता' में राजयोग की भी चर्चा है। पतंजलि ने जो कहा उसके अमुक सूत्र एक ओर रखकर जो सूत्र ज्यादा प्रासंगिक लगे ऐसे पतंजलि के सूत्र भी रखे। इनमें से मैं और आप, कौन से योग को ग्रहण करे कि उसका अंश बनकर ज्यादा प्रसन्न रह सके? मुझे दो बातें कहनी है। 'समत्वम् योग उच्यते', हमें भारी चर्चा में नहीं पड़ना है। योग की बहुत सारी बातें होनी चाहिए। हर एक की भिन्न रुचि होती है। पर मैं और आप समत्व टिकाए रखे तो हमारे पास योगेश्वर होंगे। वेद और उपनिषद सत् के ग्रंथ है। इनमें सत् की चर्चा है। 'भगवद्गीता' सम का ग्रंथ है। सम के ऊपर जोर लगाया है। 'रामचरित मानस' में केन्द्रिय विचार 'सब' है।

सब नर करहि परस्पर प्रीति।

सब, सब, सब। मेरी दृष्टि से 'गीता' के इस सम का जतन करे तो योगेश्वर हमारे साथ ही है। हमारे भीतर ही है। यह समता ममता के कारण खंडित होती है। ममता विभाजन करा दे। यद्यपि 'रामचरित मानस' की ममता के दो रूप होते हैं। यद्यपि 'रामचरित मानस' की ममता के दो रूप है। ममता माने भयानक अंधकार। परंतु भगवान राम हमें फैलाव देते हैं कि जहां-जहां तेरी ममता हो 'सब कर ममता ताग बटोरी' सारी ममताओं के धागे बटोरकर एक ऐसी रस्सी बनाकर मेरे पैरों में बांधकर खींच तो मैं तेरी ओर खींचा चला आऊंगा। यह ममता का सदुपयोग है। कूडे में से फसल पकती है। क्या हम सुख-दुःख में सम रह सकते हैं? यह मेरा और यह पराया इसे छोड़ दे। हम भीतर में सुख-दुःख को सम मान सके। 'समःसर्वेषु भुतेषु' ऐसे हम अपने जीवन में सुख और दुःख में सम रह सके तो योगेश्वर कृष्ण अपने पास है।

विजय-विभूति की ज़रूरत नहीं है। एक का होना सबकी पूर्ति करता है।

हमारे भीतर ही आंदोलन है राग-द्वेष और निंदास्तुति के। इन सभी द्वन्द्वों की चर्चा कर सम रहने का सूचन किया है। 'गीता' ने कहा -

तुल्यनिंदा स्तुतिर्मौनी।

इसका हमें अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास करने से आनंद मिलता है। हम संसारी है। गंगासती ने कहा है 'करवो भजननो अभ्यास।' भगवान करे सुख और दु:ख में हम सम रह सके। हम योगेश्वर का अपने पास होने का अहसास करेंगे।

किस तरह से रहना है यह प्रश्न आता है। बहुत सुख मिले तब मेरी यह बिनती है कि यह देखिए कि हम पहले क्या थे यह याद करना है। इस समय मैं चार्टर प्लेन से आया हूं। मैं चार्टर प्लेन में बैठूं तब भी मुझे याद रहा है कि मेरे स्लीपर की पट्टी टूटती थी तब मैं उसमें बडा कांटा फंसाता था। ऐसे आदमी को सुख-दु:ख समान धीरे-धीरे होता जायगा। आंख बंद हो तो हम रोते नहीं और आंख खुलने पर क्रन्दन नहीं करते। सबका सहज स्वीकार करते हैं। इसी तरह कभी सुख आए तब आंख थोड़ी-सी बंद रखनी चाहिए और चिंतन करना कि मेरा मूल कहां पर है? जब दु:ख आए तब भी हमें अपना मूल याद करना चाहिए। सुख आए तब आंख खोलनी और प्रभु ने मुझे आसपास के लोगों में बांटने का काम सौंपा है यह याद रखना।

ऐसा होना चाहिए पर तकलीफ़ यह है कि हम तो मनमानी ही करते हैं! मुझे दक्षेश ठाकर ने एक किताब दी। मुल्ला नसीरुद्दीन के छोटे-छोटे प्रसंग है। मुल्ला की पत्नी ने कहा, 'हमारा बेटा फज़लू दूध की रट करता है तो हम गाय पाल ले।' मुल्ला ने कहा, हमारे बाड़े में मुश्किल से एक गधा खड़ा है तो फिर गाय कहां रखूं? परंतु पत्नी ने जिद्द पकड़ी तो गाय ले आए। गधे के साथ गाय बांधी। गाय के कारण गधे को जगह की तंगी हो गई। नसीरुद्दीन से यह सहन नहीं हुआ। उसने भगवान से प्रार्थना की, 'हे भगवान! मेरी पत्नी ने कहा और मेरे बेटे की ज़रूरत थी अत: गाय खरीद ली पर अब मेरी यह प्रार्थना है कि इस गाय को मार डाल। मेरा गधा सुरक्षित रहना चाहिए।' मुल्ला को भरोसा था कि प्रार्थना निष्फल नहीं जायगी। सुबह हुई तो देखा कि गाय के बदले गधा मर गया! सुबह उठकर मुल्ला ने कहा, 'हे मालिक, तू कैसा ईश्वर है? गाय और गधे का फर्क भी तुझे नहीं दिखता, तू नहीं परख सकता तो तू काहे का भगवान?'

हम सुख-दु:ख का खेल तमाशा भी ईश्वर पर डाल देते हैं! हमारी कांवर के दो पक्ष है यदि ये सम हो जाय। 'सुखने दु:खनी जेने हेडकी न आवे।' यह जो समता हो जाय तो योगेश्वर हमारे पास है। दूसरा, निंदा और स्तुति की समता आ जाय। लोग निंदा और स्तुति करते हैं। ऐसे समय में भजन से समता आ जाय तो समझने का योगेश्वर हमारे पास है। तीसरा, स्वीकार और अस्वीकार में सम रह सके। बस, योगेश्वर अनुभव में आ जाते हैं। यह समत्व योग है।

अब 'योग: कर्मषु कौशलम्।' हमारा जो काम हो, स्वधर्म हो, किसान हो तो किसान, ऑफिसर हो तो ऑफिसर, जो भी हो अपने कार्य को कुशलता से करना यही योग है। कार्यकुशलता के कितने ही कठिन भाष्य हुए हैं पर हमें इससे क्या? हमारा जो क्षेत्र है उसी को न्याय दे। आज अखबार में बहुत बड़ा लेख आया है। एक शिक्षक ने अपने उच्च अधिकारी को फोन किया। अब यह बात असली हो या नकली पर बात अच्छी है। उसने फोन

किया कि, 'मैं नौ दिनों की छुट्टी चाहता हूं। बापू की कथा सुननी है।' उच्च अधिकारी ने कहा, 'क्या बापू ऐसी सीख देते हैं कि हमें अपना कार्यक्षेत्र छोड़कर सत्संग करने जाना चाहिए? तू यहां नहीं होगा तो कितने विद्यार्थीयों का भविष्य बिगड़ेगा?' फिर शिक्षक ने कहा, 'अब मैं नहीं आऊंगा।' यह मुझे पसंद आया। पर इस सूत्र का पूरी तरह से स्वीकार नहीं कर सकता। कभी किसी दिन ओफिस से छुट्टी लेकर आना हो तो आ सकते हैं। कथाश्रवण से जितना सुधार होगा उतना ओफिस से नहीं होगा! फ़र्ज़ में चुस्ती होनी चाहिए पर कथा को छोटी न माने। धर्मस्थान में फ़र्ज़ ही होनी चाहिए ऐसा मत मानिए। फ़र्ज़ होनी चाहिए पर एक वस्तु को मंडित करने के लिए आप दूसरी को खंडित कर दे इसका मैं अस्वीकार करता हूं। कर्म में हमारी कुशलता रहनी चाहिए।

श्री मधुसूदन सरस्वती महाराज ने ऐसा कहा है कि आप अपने सभी कार्यों को न्याय देते-देते ओफिस, खेत, नींद, भोजन, वस्त्र सबको न्याय दीजिए। घूमिए-फिरिए सब कुछ कीजिए और सबको समय दीजिए पर एक वस्तु मुझे बहुत पसंद है। इन सभी से जब अवकाश मिल जाय तब हरिनाम लेना। मैं यह नहीं कहता कि इतने नाम-जप कीजिए।

'योग: कर्मषु कौशलम्।' ऐसा समत्व और कर्मकुशलता लाए तो योगेश्वर अपने पास है। दूसरी शर्त यह कि धनुर्धर पार्थ अपने पास होना चाहिए। ज्यादा व्याख्या नहीं है। मैं जिम्मेवारी से अर्जुन के बारे में अभिप्राय देता हूं कि अर्जुन के पास हाथ थे, आंख थी। दोनों मजबूत है। उसने दोनों का प्रयोग यथासमय किया है। हमें कौन सी धनुर्विद्या प्राप्त करनी है? अपने हाथ और आंख बराबर रहे। हमारे गुरु ने जो दृष्टि दी है वह हंमेशा बनी रहे। यही जीवन का धनुर्विद्या कौशल है।

तो बाप, हाथ और आंख का ठीक जतन करे; समत्व और कार्यकौशल्ययोग का ठीक से जतन करे, तो हमारे पास निरंतर योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर पार्थ है।

श्री गीताजयंती महोत्सव में 'गीताविद्यालय', जोडियाधाम में दिया गया वक्तव्य : दिनांक १३-१२-२०१३

|| जय सीयाराम ||